अग्निशिखा एवम् पुरोधा

अखिल भारतीय पत्रिका

जुलाई २०२४

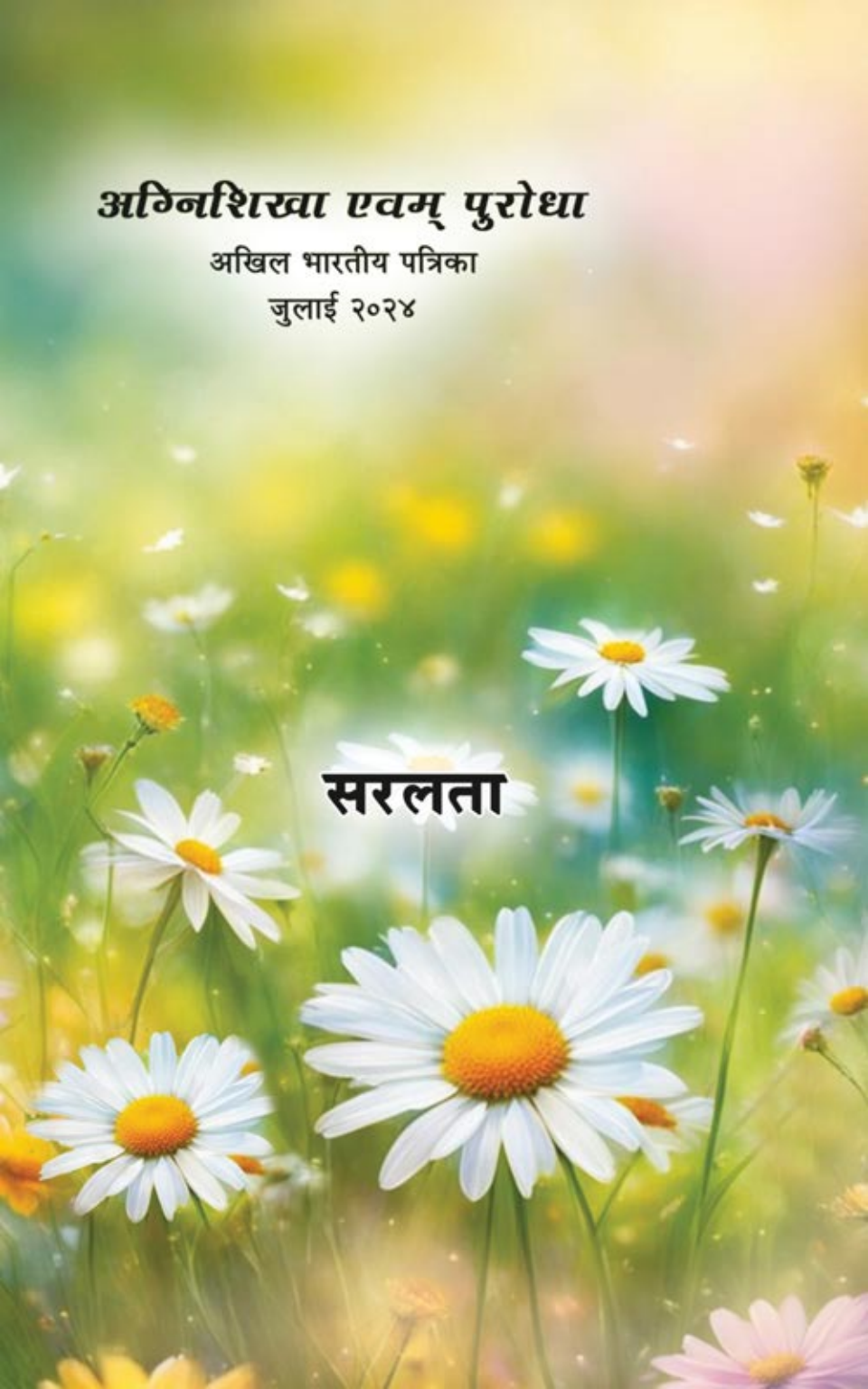

सरलता

विषय-सूची

सरलता

(श्रीमाँ के वचन)

सन्देश/सम्पादकीय	३
सरलता : एक भागवत गुण	५
सरलता और जटिलता	८
आध्यात्मिकता को विकसित करना	१९
विनम्र होना	३०

पुरोधा

दैनन्दिनी		३५
'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन' : नयी शिक्षा	नवजातजी	३८
वह तुम्हारे अन्दर मौजूद है	नलिनीकान्त गुप्त	४१
छा गया (कविता)	श्री विश्वनाथ	४४
अपलक निहारती रह गयीं...	वन्दना	४५

हमेशा सुखी रहना, मेघविहीन और उतार-चढ़ावरहित सुख— अन्य सभी चीज़ों की अपेक्षा इसे पाना सबसे ज़्यादा कठिन है।

श्रीमाँ

जून २०२४ के मुखपृष्ठ की पेंटिंग ऋतम् उपाध्याय की है। इसका उल्लेख करने से हम चूक गये। क्षमाप्रार्थी हैं।

पाठकों को हम यह याद दिला दें कि वैसे पुराने कलेवर की 'अग्निशिखा' का यह हमारा ५४वाँ वर्ष चल रहा है।

सन्देश

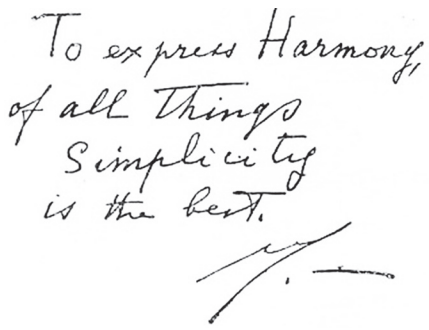

'समस्वरता' प्रकट करने के लिए सभी चीज़ों में 'सरलता' सबसे अच्छी है।

श्रीमाँ

सम्पादकीय : सरलता में महान् सुन्दरता होती है। यह एक ऐसी वस्तु है जिसे हम प्रकृति के प्रारम्भिक सर्जनों में स्पष्ट रूप से देखते हैं। लेकिन मानसिकभावापन्न मानव के आने से जैसे-जैसे क्रमविकास अधिकाधिक जटिलता में प्रवेश करता है, वैसे-वैसे यह सरलता मानसिक अज्ञान की अन्तहीन भूल-भुलैया में खोती जाती है। आज हम मानव-क्रमविकास के उस चौराहे पर खड़े हैं जहाँ इस अत्यधिक जटिलता को भागवत सरलता के लिए रास्ता देना होगा।

हमारा यह अंक इस महत्त्वपूर्ण, साथ ही विरल गुण को समर्पित है।

दिव्य पवित्रता : पूर्ण सरलता में, उसे केवल होने में ही सुख मिलता है।
श्रीमाँ

सरलता : एक भागवत गुण

भागवत सरलता की आवश्यकता

सृष्टि का एक विशेष पहलू है (शायद बहुत आधुनिक पहलू) : अव्यवस्था और अस्त-व्यस्तता—असामञ्जस्य और विभ्रान्ति। एक अस्तव्यस्तता और भ्रान्ति जो प्रत्येक रूप ले लेती है—वह संघर्षों, निरुद्देश्य प्रयासों और व्यर्थ ख़र्च की गयी ऊर्जा में बदल जाती है। यह निर्भर करता है कि तुम किस स्तर पर हो, लेकिन भौतिक रूप में, क्रिया में इसका अर्थ होता है, व्यर्थ की जटिलताएँ, बरबाद की हुई ऊर्जाएँ, चीज़ें, समय का अपव्यय, अबोधगम्यता, ग़लतफ़हमी, भ्रम, अव्यवस्था—पुरातन काल में जिसे विकृति कहते थे, वेद में जिसे प्रमाद या प्रमत्तः कहा जाता था, यानी हमें धनुष पर चढ़े हुए बाण की तरह सीधा लक्ष्य तक जाना चाहिये, जिस तरह शर इधर-उधर नहीं भटकता उसी तरह हमें भी सरलता के पथ को अपना कर सीधा अपने उद्देश्य तक पहुँच जाना चाहिये। प्रमाद है, शुद्ध रूप से भागवत क्रिया के सामञ्जस्य से एकदम दूर हटी हुई चीज़ों में से एक—जब कि कितना आसान है, बस सरल बने रहना... यह तो बच्चों के खेल-जैसा है... ऋजु, सीधा होना, बस सीधे बने रहो, उन बेवक़ूफ़ी-भरी जटिलताओं और पेचीदगियों में न पड़ो। हाँ, तो हम यह भी कह सकते हैं कि यह एक ही सिक्के के चित् और पट हैं : उस अव्यवस्था और जटिलता को भी एक ऐसे साधन के रूप में लिया जा सकता है जिसके होने की वजह से व्यक्ति शुद्ध तथा भागवत सरलता की आवश्यकता के प्रति सचेतन हो सकता है, यह उसे निष्कपट बनने के लिए उकसा सकता है।

मेरा शरीर प्रबल रूप से, बहुत शक्तिशाली रूप में अनुभव कर रहा है कि सब कुछ कितना सरल, कितना सरल हो सकता है!

और मानव सत्ता के लिए—सभी के लिए—अगर उन्हें रूपान्तरित होना है तो उन्हें अधिकाधिक सीधा और सरल बनना होगा। 'प्रकृति' की वे सभी जटिलताएँ जिन्हें मनुष्य अब समझना शुरू कर रहा है, जिनका वह अध्ययन कर रहा है, वह देख रहा है कि छोटी-से-छोटी चीज़ भी कितनी दुरूह है (हमारे शरीर की छोटी-से-छोटी क्रिया भी सचमुच ऐसे जटिल तन्त्र का परिणाम है जिसके बारे में हम सोच भी नहीं सकते... निश्चित

रूप से, मानव मन के लिए संसार की प्रत्येक चीज़ के बारे में कल्पना करना, उन्हें समझना असम्भव ही होता है) और आज के युग में उन चीज़ों का अन्वेषण विज्ञान कर रहा है। और अब तो हम स्पष्ट रूप से यह देख रहे हैं कि अगर अपनी कार्य-पद्धति को भागवत बनाना है तो हमें समस्त 'अव्यवस्था' और 'भ्रान्ति' से पीछा छुड़ाना ही होगा। इसके लिए पहला पग है—सभी कुछ को सरलता में, अधिकाधिक सरलता में विकसित होना।

१५ मई १९६३ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

समृद्ध सर्वालिंगनकारी सरलता

दूसरे शब्दों में रखें तो 'प्रकृति' अथवा यूँ कहें कि भौतिक प्रकृति अपनी अभिव्यक्ति में विवश थी कि मौलिक 'सरलता' को प्रकट करने के लिए वह एक अकल्पनीय, प्रायः एक अनन्त जटिलता का सहारा ले।

यह उसी पुरानी चीज़ को वापस ले आती है : यह उस जटिलता की अति है जो उस सरलता को सम्भव बनाती है जो रिक्त या ख़ाली नहीं है—वह है एक समृद्ध सरलता। सर्वालिंगनकारी सरलता, जब कि उन जटिलताओं के बिना सरलता रिक्त होती है। समझ रहे हो? है न यह बहुत रुचिकर!

पिछले कुछ दिनों से यही मेरी अनुभूति रही है।

वैज्ञानिक खोजों पर खोजें किये जा रहे हैं। उदाहरण के लिए, शरीर के सम्बन्ध में भी ऑपरेशन के उपकरणों में एक क्रान्ति-सी आ रही है। कैसे-कैसे अकल्पनीय आविष्कार हो रहे हैं आजकल! आश्चर्यकर जटिलता! और यह प्रयास भी इस दृष्टिकोण से हो रहा है कि हम 'एकता' को, **एकमेव सरलता** को अभिव्यक्त करें जो भागवत अवस्था है।

(मौन)

शायद अब चीज़ें तेज़ी से घटित हों... लेकिन सब कुछ एक ही बात पर आकर ठहर जाता है, और वह है पर्याप्त अभीप्सा का होना, जो इतनी तीव्र और प्रभावकारी हो कि 'उसको' आकर्षित कर सके जो इस सबको रूपान्तरित कर सके : जटिलता को सरलता में, क्रूरता को प्रेम में... इत्यादि।

केवल शिकायत करने और यह कहने का कोई मतलब नहीं है कि खेद है कि चीज़ें इस तरह की हैं। वे जैसी हैं, वैसी हैं। क्यों?... जब

वे वैसी न रहेंगी तब शायद हम इस *क्यों* को जान पायेंगे। या इसे इस तरीक़े से रखा जा सकता है : अगर हमें इस *क्यों* का पता लग जाये तो वे फिर वैसी न रहेंगी।

इसलिए इस तरह की धारणाएँ कि 'ज़्यादा अच्छा होता अगर यह चीज़ होती ही नहीं' 'इसके अस्तित्व का कारण क्या है भला' इत्यादि बातें एकदम अव्यावहारिक, एकदम व्यर्थ होती हैं।

हमें जो करना है उस पर अपना ध्यान केन्द्रित करें, जिस रूपान्तर को लाना है उसके लिए तन-मन को न्योछावर कर दें—यही है एकमात्र करने-लायक़ व्यावहारिक चीज़।

... तो जब पृथ्वी को प्रगति करने के लिए मृत्यु की और आवश्यकता नहीं रहेगी तब मृत्यु का अस्तित्व न रहेगा। जब पृथ्वी को प्रगति करने के लिए दुःख-दर्द सहने की आवश्यकता न रहेगी तब दुःख-दर्द विलुप्त हो जायेगा। और जब पृथ्वी को प्रेम करने के लिए घृणा की आवश्यकता न रहेगी तब घृणा का कहीं नामोनिशान तक न रहेगा।...

१५ मई १९६३ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

... जल्दबाज़ी करने की कोई ज़रूरत नहीं है—जल्दबाज़ी में बने रहने, धीरज खोने की कोई आवश्यकता नहीं है। अधैर्य होने का कोई उपयोग नहीं है, इससे तो दिल खट्टा हो जाता है—यह एकदम से व्यर्थ है।

जब समय आयेगा, चीज़ सम्पन्न हो जायेगी, जब प्रभु चाहेंगे, जब वे चाहेंगे, तब वस्तु उपलब्ध होगी, बस यही बात है। हम हमेशा बहुत ज़्यादा चिन्तित रहते हैं—या फिर यह कहें कि हमारी चिन्ताएँ 'उनके' कार्य पर प्याज़ की परत-जैसी बन जाती हैं।

११ अगस्त १९६४ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

हमें यह सीखना चाहिये कि हमने चाहे जितना प्रयास, चाहे जितना संघर्ष किया हो, चाहे जितनी विजय पायी हो, हम जिस पथ को पूरा कर चुके हैं वह, अभी जिस पर चलना बाक़ी है, उसकी तुलना में कुछ भी नहीं है। श्रीमाँ

सरलता और जटिलता

श्रीअरविन्द चाहते हैं कि हम सरल बनें

आनन्दमयी सहजता।

सब कुछ व्यवस्थित करने, काट-छाँट कर एकदम ठोस बना देने वाला यह मन ही भयंकर है! इसने हमारे अन्दर यह बात कूट-कूट कर भर दी है कि इसके बिना हमारा बेड़ा पार नहीं हो सकता, कि इसका प्रतिरोध करना बड़ा मुश्किल हो जाता है। सचमुच, इसने सारी मानवजाति को यह विश्वास दिला दिया है। दुनिया के सभी तथाकथित श्रेष्ठ लोगों के अन्दर यह बात पैठ गयी है कि व्यवस्था करने वाली इस मानसिक शक्ति के बिना कुछ भी सम्पन्न नहीं किया जा सकता।

लेकिन श्रीअरविन्द चाहते हैं कि हमारे अन्दर वही समान आनन्द हो जो खिलते हुए गुलाब में देखा जाता है: *सरल रहो, सरल रहो, सरल रहो*। और जब मैं यह सुनती हूँ या देखती हूँ तो ऐसा लगता है मानों कोई सुनहरी ज्योति की नहर बह चली हो, कोई बग़ीचा महक उठा हो—सब, सब, सब कुछ खुला हुआ है। **सरल बने रहो।**

तो देख रहे हो मेरे बच्चे...

इन पिछले दो-तीन दिनों से मैं निरन्तर इसे ही तुम्हारे लिए देख रही हूँ। फिर आज सुबह यह चीज़ मेरे लिए आयी, क्योंकि मेरे काम का ढेर इतना इकट्ठा हो गया है कि जितना मेरे पास समय है उससे दसगुना ज़्यादा समय मैं लगाऊँ केवल तभी मेरे काम सिमट पायेंगे। तो यह हाल था मेरा, मैं कुछ चिन्तित-सी हो गयी थी; यहाँ तक कि एक शक्ति थी जो चाह रही थी कि मैं रुक कर थोड़ा आराम कर लूँ, और मैं अपने पूरे बल-बूते से उसका विरोध कर रही थी—जब तक कि मैंने यह न समझ लिया कि मैं सचमुच बेवक़ूफ़ी कर रही हूँ। यह वही समान चीज़ थी, वह मुझसे आराम करने को कह रही थी, मैं ठहर गयी और मैंने अपने-आपको एकदम शिथिल छोड़ दिया—और तुरन्त सब कुछ आनन्द से भर गया।

सचमुच हम बहुत ही तनाव में रहते हैं, नहीं रहते क्या?

तो यह रहा मेरे बच्चे, तुम्हारे लिए मेरा इस हफ़्ते का सन्देश।

इसके लिए क्या किया जाये? ओह, वह अपने-आप आयेगा। लेकिन

यह सच है कि हम हमेशा बहुत ज़्यादा तनाव में रहते हैं—हमेशा। और मुझे मालूम है कि जब तक हम इस प्रशंसनीय मन से नियन्त्रित रहेंगे तब तक हमें यही लगेगा कि तनावहीन होने का मतलब ही है तमस् और निश्चेतना में जा गिरना। ये सभी पुरानी धारणाएँ बनी रहती हैं, अपने-आपको हमेशा बनाये रखती हैं और गुणदोष की आलोचना और विवेचना करने वाले उस विचार का अवशेष तो हमेशा बना रहता है जो पल-पल तुम्हें चेताता रहता, उकसाता रहता है कि "सावधान, सावधान, तमस्, तमस् में न जा गिरो! काम करते रहो, सावधान, तुम नींद में गिर रहे हो—बहुत बुरा, बहुत बुरा है यह।" यह एकदम से मूर्खतापूर्ण है। अपने-आपको सचेतन होकर शिथिल छोड़ देना, तमस् में डुबकी लगाना नहीं है, यह तो तत्काल हर्ष और प्रकाश को पाना है।

१६ सितम्बर १९६१ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

मनुष्य का सामान्य मनोभाव

यह देखना बड़ा मज़ेदार होता है कि किसी भी कठिनाई को सामान्य मनुष्य कितना **बढ़ा-चढ़ा** कर देखता है!... जब कि अगर वह सच्चा मनोभाव रखे—**सामान्य** मनोभाव, सीधा-सरल—ओह! तब जीवन कितना सुखद-सहज हो उठेगा। इसके लिए व्यक्तियों को सरल होना होगा। अगर व्यक्ति शरीर में सरलता के स्पन्दन पैदा कर ले तो कठिनाइयों के सामने उसकी प्रतिक्रिया 'सामान्य' होगी, शान्त और विश्वस्त होगी, और इससे चीज़ें कितनी सरल हो जायेंगी! लेकिन जैसे ही बेचैनी, डर, असन्तोष की व्याकुलता आ जाये कि बस, सब ख़तम...। इसीलिए मैं कहती हूँ कि कठिनाई को अगर विश्वास और सरलता के साथ स्वीकार कर लिया जाये तो वह कम-से-कम हो जाती है, मेरे कहने का मतलब है कि भौतिक रूप से भी उसके स्पन्दन कमज़ोर पड़ जाते हैं। कोशिश कर देखो!

२५ फ़रवरी १९६१ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

सरलता और स्वाधीनता

सबसे अच्छी बात यह होगी कि तुम्हारे अन्दर कोई पूर्वाग्रह या पहले से सोचे हुए विचार या सिद्धान्त न हों—और नैतिक सिद्धान्त, व्यवहार के

निश्चित नियम, "क्या करना चाहिये" और "क्या नहीं करना चाहिये," और नैतिकता के बारे में, प्रगति के बारे में पहले से सोचे हुए विचार और वे सभी सामान्य सामाजिक तथा मानसिक रूढ़ियाँ भी न हों—इससे बुरी और कोई बाधा नहीं होती। मैं ऐसे लोगों को जानती हूँ जिन्होंने इन मानसिक रचनाओं में से एक को जीतने के लिए दर्जनों साल बरबाद किये!

तुम इस तरह हो सकते हो, उद्घाटित—सचमुच सरलता में उद्घाटित... जानते हो, एक तरह की सरल सरलता होती है... *(हथेली फैलाने की मुद्रा)*, जो सब कुछ ग्रहण करने को तैयार रहती है... तब, शायद, कुछ घटित हो जाये।

स्वाभाविक है कि तुम्हारे अन्दर प्रगति की प्यास होनी चाहिये, जानने की प्यास, स्वयं को रूपान्तरित करने की प्यास, और सबसे बढ़ कर होनी चाहिये **प्रेम** और **सत्य** के लिए प्यास—अगर तुम इसे बनाये रख सको तब तुम ज़्यादा तेज़ी से आगे बढ़ते हो। सचमुच, एक प्यास हो, एक आवश्यकता, समझे, एक आवश्यकता... बाक़ी चीज़ों का फिर कोई महत्त्व नहीं रहता, तुम्हें आवश्यकता है बस **'उसकी'**।

उससे चिपके रहना जो तुम सोचते हो कि तुम जानते हो, अपने अनुभवों से चिपके रहना, अपनी पसन्दों से चिपके रहना, अपनी आदतों से चिपके रहना, अपनी तथाकथित आवश्यकताओं से चिपके रहना, जगत् जैसा है उसके उसी रूप से चिपके रहना, यही सब है जो तुम्हारे हाथ-पैर बाँध देता है। तुम्हें एक के बाद एक इन सभी रस्सियों को खोलना होगा, सभी जकड़नों से अपने-आपको मुक्त करना होगा।

यह बात हज़ारों बार कही गयी है, लेकिन लोग वही समान चीज़ें करते रहते हैं... यहाँ तक कि वे भी, जो बहुत वाक्पटु होते हैं, जो इस चीज़ का उपदेश औरों को देते हैं, वे भी चिपके रहते हैं—वे अपने ही तरीक़े से देखने, अपने ही तरीक़े से अनुभव करने, प्रगति करने की अपनी ही आदत से चिपके होते हैं, क्योंकि उनके लिए उनका अपना ही तरीक़ा एकमात्र सम्भव तरीक़ा होता है।

अब और बन्धन नहीं—स्वतन्त्र, स्वतन्त्र, स्वतन्त्र, स्वतन्त्र! हमेशा प्रत्येक चीज़ को बदलने के लिए तैयार रहना, सिवाय एक चीज़ के: अभीप्सा के। उस प्यास के। इन दोनों को निरन्तर बनाये रखो।

मैं अच्छी तरह समझती हूँ: कुछ लोगों को "भगवान्" का विचार अच्छा नहीं लगता क्योंकि इसमें सभी यूरोपीय या पाश्चात्य धारणाओं का घालमेल हो जाता है (जो भयंकर है), और इसलिए यह विचार उनके जीवन को कुछ अधिक जटिल बना देता है—लेकिन हमारा उन धारणाओं से कोई लेना-देना नहीं! हमें उस "किसी वस्तु" की आवश्यकता है, हमें आवश्यकता है 'पूर्णता' की, आवश्यकता है 'प्रकाश' की, आवश्यकता है 'प्रेम' की, आवश्यकता है 'सत्य' की, आवश्यकता है 'परम पूर्णता' की—बस इसी की है आवश्यकता। धारणाएँ, सूत्र... जितने कम सूत्र उतना अधिक अच्छा। एक आवश्यकता, आवश्यकता, आवश्यकता हो... वह यह कि केवल वह 'परम पूर्णता' ही हमें सन्तुष्ट कर सकती है, और कुछ नहीं, कोई अधकचरी चीज़ नहीं। बस केवल वही, और फिर रास्ते पर बढ़ते चलो! बढ़ते चलो! तुम्हारा पथ तुम्हारा अपना पथ होगा; इसका कोई मूल्य नहीं कि वह कौन-सा पथ होगा; एक बार उस 'परम' को पाने का निश्चय कर लिया तो पीछे मुड़ कर मत देखो, बस चरैवति, चरैवति।

७ अक्तूबर १९६४ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

सत्ता का आनन्द

अस्तित्व में रहने का आनन्द।

एक ऐसा भी समय आता है जब व्यक्ति प्रायः तैयार होने लगता है, जब प्रत्येक चीज़ में, हर एक पदार्थ में, एक-एक क्रिया में, एक-एक स्पन्दन में, अपने चारों ओर की सभी चीज़ों में—केवल लोगों और सचेतन सत्ताओं में ही नहीं बल्कि वस्तुओं एवं पदार्थों में; केवल पेड़-पौधों एवं जीवित वस्तुओं में ही नहीं बल्कि उपयोग में आने वाली किसी भी चीज़ में, अपने चारों ओर घिरी वस्तुओं में—इस आनन्द को, सत्ता के इस आनन्द को, केवल वही होने के आनन्द को जो व्यक्ति है, केवल होने के आनन्द को अनुभव करता है। और वह देखता है कि सब कुछ उसी रूप में स्पन्दित हो रहा है। किसी वस्तु को स्पर्श करते ही वह उस आनन्द का अनुभव करता है। पर मैं कहती हूँ कि स्वभावतः ही, मनुष्य को पहले उस साधना का अभ्यास कर लेना चाहिये जिसके सम्बन्ध में मैंने प्रारम्भ में कहा है; अन्यथा, जब तक व्यक्ति में कामना, पसन्दगी, आसक्ति या अनुरक्ति एवं

विरक्ति और यह सब होता है तब तक वह आनन्द का अनुभव नहीं कर सकता—बिलकुल नहीं कर सकता।

और जब तक मनुष्य को किसी चीज़ में सुख—सुख, हाँ, किसी चीज़ में प्राणिक और भौतिक सुख—मिलता है, तो वह इस आनन्द का अनुभव नहीं कर सकता। क्योंकि यह आनन्द सर्वत्र विद्यमान है। यह आनन्द एक बहुत सूक्ष्म वस्तु है। वस्तुओं में विचरण करते समय तुम्हें ऐसा लगता है मानों वे अपने आनन्द को तुम्हारे सामने गाकर व्यक्त कर रही हों। ऐसा भी समय आता है जब तुम अपने चारों ओर के जीवन में इसके बहुत अभ्यस्त हो जाते हो। निस्सन्देह, मुझे यह स्वीकार करना चाहिये कि इस आनन्द को मनुष्यों में अनुभव करना थोड़ा अधिक कठिन है, क्योंकि उनमें ऐसी बहुत-सी मानसिक और प्राणिक रचनाएँ होती हैं जो प्रत्यक्ष दर्शन के क्षेत्र में आती हैं और आनन्द को अस्त-व्यस्त कर देती हैं। उसमें इस तरह की अहंकारपूर्ण कठोरता अधिक मात्रा में होती है जो अन्य वस्तुओं के साथ मिश्रित हो जाती है, इसलिए वहाँ 'आनन्द' का स्पर्श पाना अधिक मुश्किल होता है। पर व्यक्ति पशुओं में भी इस आनन्द का अनुभव कर सकता है; अभी तक यह अनुभव पौधों की अपेक्षा उनमें ज़रा अधिक कठिनाई से आता है। किन्तु पौधों में, फूलों में यह अनुभव बहुत अद्‌भुत होता है! वे अपने सारे आनन्द को मानों वाणी द्वारा व्यक्त करते हैं, बाह्य रूप में प्रकट करते हैं। और जैसा कि मैंने कहा, चेतना की एक ऐसी स्थिति होती है जिसमें सभी परिचित पदार्थ, व्यक्ति के चारों ओर की चीज़ें, उसके द्वारा प्रयुक्त चीज़ें, प्रत्येक अपने यथास्थित रूप में सुखी होती है। तो व्यक्ति इस प्रकार उस क्षण जान जाता है कि उसने सच्चे दिव्य 'आनन्द' का स्पर्श पा लिया है। और यह स्थिति किसी शर्त से बँधी नहीं होती। मेरा आशय है कि यह आश्रित नहीं होती... यह किसी भी वस्तु पर आश्रित नहीं होती। यह बाह्य परिस्थितियों पर निर्भर नहीं करती, यह कम या अधिक अनुकूल परिस्थितियों पर निर्भर नहीं करती, और किसी भी वस्तु पर निर्भर नहीं करती: यह विश्व के मूलतत्त्व के साथ मिलन की स्थिति है।

और जब यह अवस्था आती है तो शरीर के सभी कोषाणुओं में व्याप्त हो जाती है। यह कोई सोची हुई चीज़ भी नहीं होती—मनुष्य उस अवस्था में तर्क नहीं करता, विश्लेषण नहीं करता, ऐसा कुछ भी नहीं होता: यह

ऐसी *स्थिति* है जिसमें मनुष्य केवल निवास करता है। और जब शरीर इसमें हिस्सा लेता है तो यह इतना ताज़ा—इतना ताज़ा, इतना सहज, इतना... कि उसके बाद मनुष्य अपनी ओर नहीं लौटता, उसमें आत्म-निरीक्षण का, आत्म-विश्लेषण का या वस्तुओं के विश्लेषण का कोई भाव नहीं रहता। यह सब मानों उल्लास-भरे स्पन्दनों का एक गीत बन जाता है, परन्तु बहुत, बहुत ही शान्त, उग्रता से रहित, आवेग से रहित होता है, उसमें यह सब कुछ नहीं होता। यह बड़ा सूक्ष्म और साथ ही बहुत सघन होता है, और उसके आने पर ऐसा प्रतीत होता है कि सारा विश्व ही एक अद्‌भुत स्वरसंगति है। वह वस्तु भी जो सामान्य मानव चेतना को भद्दी और अप्रीतिकर लगती है अब अद्‌भुत प्रतीत होती है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. २५-२७

जीवन को पूर्ण बनाना

पुण्य-भावना हमेशा जीवन में उन वस्तुओं को निकाल रखने में व्यस्त रहती है जो उसे जीवन में बुरी लगती हैं और संसार के विभिन्न देशों के सभी पुण्यों को यदि एक साथ एकत्र कर दिया जाये तो जीवन में बहुत थोड़ी-सी चीज़ें ही बच रहेंगी।

पुण्य-भावना पूर्णता की खोज करने का दावा करती है, परन्तु पूर्णता का अर्थ है एक समग्रता। अतः ये दोनों बातें एक-दूसरे को काटती हैं। पुण्य-भावना बहिष्कार करती है, कम करती है, सीमाएँ बाँधती है और पूर्णता प्रत्येक चीज़ को स्वीकार करती है, किसी चीज़ का परित्याग नहीं करती, बल्कि प्रत्येक चीज़ को उसके ठीक स्थान में रखती है—ये दोनों (पुण्य-भावना और पूर्णता) स्वाभाविक है कि एक-दूसरे का समर्थन नहीं कर सकतीं।

जीवन को गम्भीरतापूर्वक लेने का साधारणतया अर्थ है दो बातें करना : पहली, उन चीज़ों को महत्त्व देना जो शायद कोई महत्त्व नहीं रखतीं; दूसरी, जीवन को उन थोड़े-से गुणों में सीमित कर देना जो पवित्र और जीवन के लिए उपयोगी समझे जाते हैं। कुछ लोगों में—उदाहरणार्थ, उन लोगों में जिनके विषय में यहाँ श्रीअरविन्द कह रहे हैं, अर्थात्, "कट्टर" और "अति-नैतिक" लोगों में—यह पुण्य-भावना बड़ी रूखी-सूखी, नीरस, भद्दी

और आक्रामक बन जाती है और उसे हर जगह, प्रत्येक हर्षयुक्त, स्वाधीन और सुखमय वस्तु में दोष-ही-दोष दिखलायी देते हैं।

जीवन को पूर्ण बनाने का—मेरा मतलब यहाँ, अर्थात् पृथ्वी पर के जीवन को पूर्ण बनाने का—एकमात्र पथ है उसकी ओर काफ़ी ऊँचाई पर से देखना ताकि तुम उसे सम्पूर्ण रूप में देख सको, केवल उसके वर्तमान पूर्ण रूप को ही नहीं, बल्कि उसके भूत, वर्तमान और भविष्य के सम्पूर्ण रूप को भी देख सको; यह जो कुछ पहले था, जो कुछ अब है और जो कुछ आगे होगा—हमें यह सब एक साथ देखने में समर्थ होना चाहिये। क्योंकि एकमात्र यही तरीक़ा है जिससे हम प्रत्येक चीज़ को उसके ठीक-ठीक स्थान में रख सकते हैं। उस समय कोई भी चीज़ हटायी नहीं जा सकती, कोई भी चीज़ *नहीं हटानी चाहिये*, बल्कि प्रत्येक चीज़ अपने उचित स्थान में होनी चाहिये और बाक़ी के साथ उसका पूर्ण सामञ्जस्य बना रहना चाहिये। और उस समय वे सभी चीज़ें जो कट्टर धार्मिक व्यक्ति को इतनी 'बुरी', इतनी 'तिरस्कार-योग्य', इतनी 'अग्राह्य' प्रतीत होती हैं वे सब एक पूर्णतः दिव्य जीवन के आनन्द और स्वातन्त्र्य के कार्य बन जाती हैं। और तब कोई भी चीज़ परमात्मा के इस अद्‌भुत हास्य को जानने, समझने, अनुभव करने और जीवन में उतारने से हमें रोक नहीं सकेगी—उस परमात्मा के हास्य को जो स्वयं 'अपने-आपको' अनन्त रूप से जीते हुए देखने में असीम आनन्द का अनुभव करते हैं।

दिव्य हास्य का सूर्य

यह आनन्द, यह अद्‌भुत हास्य ही है जो समस्त अन्धकार, समस्त दुःख-दर्द और समस्त सन्ताप को विलीन कर देता है! इस आन्तर सूर्य को पाने के लिए तथा उसकी किरणों में स्नान करने के लिए स्वयं अपने अन्दर पर्याप्त गहराई तक प्रवेश करना काफ़ी है और तब सब कुछ सुसमञ्जस, ज्योतिर्मय, सूर्यमय हास्य का झरना बन जाता है, जिसमें कहीं भी कोई छाया या दुःख नहीं रह सकता।

यदि तुम उस स्थान से देख सकने में, वहाँ रहने में समर्थ हो सको तो वास्तव में बड़ी-से-बड़ी कठिनाइयों, दुःख-कष्टों और शारीरिक वेदनाओं की भी असत्यता को देख सकोगे—तब तुम्हारे लिए कठिनाई, दुःख-कष्ट

और वेदना नाम की कोई चीज़ ही नहीं रह जायेगी—प्रत्येक चीज़ एक हर्षमय और ज्योतिपूर्ण प्रकम्पन का रूप ले लेगी।

वास्तव में, यही अत्यन्त शक्तिशाली साधन है जिससे कठिनाइयों को विलीन किया जा सकता, दुःख-कष्टों को जीता जा सकता और वेदनाओं को दूर किया जा सकता है। इनमें पहले दो अपेक्षाकृत—मैं अपेक्षाकृत कह रही हूँ—आसान हैं, अन्तिम चीज़ अधिक कठिन है, क्योंकि लोगों को शरीर और वह जो कुछ अनुभव करता है उस सबको अत्यन्त ठोस, सुनिश्चित समझने का अभ्यास पड़ गया है; परन्तु यह भी वैसी ही चीज़ है, हमने अपने शरीर को एक तरल, नमनीय, अनिश्चित, नर्म वस्तु के रूप में देखना न सीखा है, न इसका अभ्यास ही किया है। हमने इसके अन्दर इस ज्योतिर्मय हास्य को प्रविष्ट करने की विधि नहीं सीखी है जो समस्त अन्धकार, समस्त कठिनाई, समस्त असंगति, समस्त असामञ्जस्य को, जो कुछ कराहता, रोता और विलाप करता है उस सबको विलीन कर देता है।

और यह सूर्य, यह दिव्य हास्य का सूर्य प्रत्येक वस्तु के एकदम केन्द्र में विद्यमान है, प्रत्येक वस्तु का सत्य है—आवश्यकता बस यही है कि हम उसे देखना, अनुभव करना और जीवन में उतारना सीखें।

भगवान् के साथ हँसो

जब कभी वातावरण गम्भीर हो उठे तो तुम निश्चित हो सकते हो कि कहीं कोई चीज़ ठीक नहीं है, कोई सन्ताप देने वाला प्रभाव, कोई पुरानी आदत अन्दर आने का प्रयास कर रही है जिसे कभी स्वीकारना नहीं चाहिये। यह सब पश्चात्ताप, यह सब सन्ताप, अयोग्यता की भावना, अपराध की भावना और फिर एक पग और आगे, पाप की भावना—ओह! यह सब... मुझे लगता है कि ये सब एक दूसरे युग, अन्धकार के युग की चीज़ें हैं।

परन्तु ये सब चीज़ें जो डटी हुई हैं, जो चिपकी रहने और बनी रहने की चेष्टा करती हैं, ये सब निषेध और जीवन को दो भागों में—छोटा और बड़ा, पवित्र और अपवित्र—बाँट देने का यह तरीक़ा! जो लोग यह घोषणा करते हैं कि वे आध्यात्मिक जीवन का अनुसरण करते हैं, वे कहते हैं : "यह कैसी बात है! तुम भला ऐसी तुच्छ चीज़ों को, जिनका इतना कम महत्त्व है, आध्यात्मिक अनुभव का विषय कैसे बना सकते हो?" और फिर भी

यह एक ऐसा अनुभव है जो अधिकाधिक ठोस और वास्तविक होता जाता है, स्थूल रूप तक में! ऐसी चीज़ों के दो भाग नहीं हैं जिनमें से "एक में" भगवान् हों और "दूसरे में" न हों। भगवान् सर्वदा, सर्वत्र विद्यमान हैं। वे किसी चीज़ को गम्भीरतापूर्वक नहीं लेते, वे प्रत्येक चीज़ से आनन्द प्राप्त करते हैं और वे तुम्हारे साथ खेलते हैं यदि तुम उनके साथ खेलना जानो। तुम खेलना नहीं जानते, लोग खेलना नहीं जानते। परन्तु वे, कितनी अच्छी तरह खेलना जानते हैं! कितनी अच्छी तरह खेलते हैं वे! प्रत्येक चीज़ के साथ, छोटी-से-छोटी चीज़ के साथ खेलते हैं: तुम्हें अपनी मेज़ पर चीज़ें रखनी हैं? ऐसा मत समझो कि तुम्हें सोच-समझकर, सजाकर रखना होगा, नहीं, तुम तो खेलने जा रहे हो: तुम इस चीज़ को यहाँ और उस चीज़ को वहाँ रख दो और फिर इसी तरह रखते चले जाओ। और फिर दूसरी बार दूसरे ढंग से रखो...। कितना सुन्दर खेल है और कितना आनन्ददायी!

तो क्या हम सहमत हैं कि अब हम यह जानने की कोशिश करेंगे कि भगवान् के साथ-साथ कैसे हँसा जाता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. १८२-८५

सरल बनो, सरल बनो

(साधक ने अपनी कठिनाइयों के बारे में चर्चा की)

जानते हो, हम जटिलताओं से घिरे रहते हैं, लेकिन हमेशा एक ऐसा स्थान होता है जहाँ सब कुछ सरल-सीधा बन जाता है—यह मेरी अपनी अनुभूति है। तुम किसी काम के लिए गोल-गोल घूमते रहते हो, उसे सफल बनाने के लिए ख़ूब परिश्रम करते हो, कई बार तुम्हें लगता है कि तुम एकदम फँस गये हो, और अचानक तुम्हारा आन्तरिक मनोभाव सब कुछ छोड़ देता है, और लो, काम हो जाता है, समस्या सुलझ जाती है—एकदम आसानी से अनायास!

मुझे यह अनुभव कई बार हुआ है। तो जब तुम्हारे सामने मुश्किल खड़ी हुई *(साधक श्रीअरविन्द पर एक पुस्तक लिख रहा था। उसी के दौरान उसे ऐसा लगा मानों उसका क़लम एकदम ठप्प पड़ गया हो।)* तो मैंने श्रीअरविन्द से तुम्हें भी ऐसी अनुभूति प्रदान करने की प्रार्थना की।

और उन्होंने बार-बार कहा, ज़ोर दे-देकर कहा: *सरल बने रहो, सरल*

बने रहो। वही कहो जो तुम अनुभव करते हो। सरल रहो, सरल रहो—बहुत आग्रह के साथ वे यह कह रहे थे। हाँ, ये केवल शब्द हैं, लेकिन दरअसल जब उन्होंने इन शब्दों का उच्चारण किया तो मानों सम्मुख प्रकाश का एक पथ खुल गया और सब कुछ कितना सरल बन गया : 'बस, एक के बाद एक डग आगे बढ़ाते चलो, बस हमें यही करना है!'—मुझे ठीक यही अनुभूति हुई।

बड़ी अजीब बात है, जान पड़ता था कि यहाँ सभी जटिलताएँ मौजूद हैं (*श्रीमाँ अपनी कनपटियाँ छूती हैं*) बहुत जटिल, और समायोजन करने में भी बड़ी दिक्कत होती है; और जब उन्होंने कहा, सरल रहो—तो कैसी विचित्र बात थी—मानों उनकी आँखों से प्रकाश निकल रहा हो, मानों व्यक्ति पल-भर में प्रकाश के एक आनन्दप्रद बग़ीचे में पहुँच गया हो।

सरल बने रहो, सरल बने रहो।

जटिलताएँ यहाँ हैं (*समान संकेत*) यह कठोर और जटिल है—और फिर एक दरवाज़ा खुल जाता है : *सरल रहो*...

जिसे वे *सरल* कहते हैं वह हर्षप्रद सहजता है; क्रिया में, अभिव्यक्ति में, गतिविधि में, जीवन में—*सरल बनो, सरल रहो, सरल बने रहो*। आनन्ददायक सहजता। क्रमविकास में उस अवस्था को फिर से प्राप्त करना जिसे वे दिव्य अवस्था कहते हैं, जो एकदम सहज और प्रसन्न अवस्था होती है। वे चाहते हैं कि हम उसकी पुनः खोज करें। और कई दिनों से वे मुझसे यह बात कह रहे हैं (यही बात तुम्हारे काम के लिए भी लागू होती है) : सरल रहो, सरल रहो, सरल बने रहो। और उनकी सरलता में बने रहना एक उज्ज्वल आनन्द प्रदान करता है।

१६ सितम्बर, १९६१ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

आध्यात्मिक वाणी :
अपनी सरलता में सर्व-समर्थ।

श्रीमाँ

हम योग-पथ पर जितना आगे बढ़ते हैं उतने ही विनयशील बनते जाते हैं और उतना ही अधिक यह देखते हैं कि जो करना बाक़ी है उसकी तुलना में हमने कुछ नहीं किया है।

श्रीमाँ

आध्यात्मिकता को विकसित करना

झगड़े के बिना जीना

तुम झगड़ा किये बिना जी सकते हो। ऐसा कहना बड़ा विचित्र-सा लगता है, क्योंकि, वस्तुएँ अभी जैसी हैं, उनके कारण, इसके विपरीत, ऐसा प्रतीत हो सकता है कि जीवन झगड़ा करने के लिए ही बना है, इस अर्थ में कि एक साथ रहने वाले लोगों का मुख्य कार्य होता है, खुले तौर पर या गुप्त रूप से झगड़ा करना। तुम हमेशा शब्दों तक नहीं उतर आते, न —सौभाग्यवश—हाथापाई तक उतरते हो, पर तुम्हारे अन्दर निरन्तर क्षुब्धता की स्थिति बनी रहती है क्योंकि तुम अपने चारों ओर उस पूर्णता को नहीं पाते जिसे तुम स्वयं उपलब्ध करना चाहते हो—किन्तु जिसे उपलब्ध करना कठिन अनुभव करते हो—पर तुम इसे एकदम स्वाभाविक समझते हो कि दूसरों को उसे उपलब्ध कर लेना चाहिये।

"वे भला ऐसे कैसे हो सकते हैं?"... तुम यह भूल जाते हो कि "वैसा" नहीं बनने में तुम अपने अन्दर कितनी कठिनाई का अनुभव करते हो!

कोशिश करो और तुम देखोगे।

प्रत्येक वस्तु को सद्भावना-भरी मुस्कान के साथ देखो, जो चीज़ें तुम्हें उत्तेजित, नाराज़ करती हैं उन्हें अपने लिए एक प्रकार की शिक्षा के रूप में ग्रहण करो और तब तुम अधिक शान्ति के साथ और अधिक प्रभावशाली रूप में जीवन यापन करोगे, क्योंकि इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुष्य जिस पूर्णता को स्वयं उपलब्ध करना चाहता है उसे दूसरों में न पाने के कारण होने वाली नाराज़गी और उत्तेजना में अपनी शक्ति का अधिकांश व्यर्थ नष्ट कर देता है।

दूसरों को जो पूर्णता प्राप्त करनी चाहिये वहाँ आकर तुम रुक जाते हो, और तुम बहुधा उस लक्ष्य के विषय में सचेतन नहीं होते जिसका अनुसरण स्वयं तुम्हें करना चाहिये। अगर तुम उसके विषय में सचेतन हो तो जो काम **तुम्हें** दिया गया है उसी से आरम्भ कर दो, अर्थात्, जो कुछ तुम्हें करना है उसे आरम्भ कर दो, दूसरे जो कुछ करते हैं उसमें व्यस्त हुए बिना, तुम्हें जो कुछ करना है उसे करो, क्योंकि, आख़िरकार, दूसरे जो कुछ करते हैं उससे तुम्हारा कोई सरोकार नहीं। और सच्चा मनोभाव

ग्रहण करने का सबसे उत्तम उपाय है, बस अपने-आपसे यह कहना : "मेरे इर्द-गिर्द जो भी हैं, मेरे जीवन की सारी परिस्थितियाँ, मेरे समीप जो हैं वे सभी वह आईना हैं जिसे दिव्य चेतना ने मेरे सम्मुख मुझे यह दिखाने के लिए रखा है कि मुझे कौन-कौन सी प्रगति करनी चाहिये। जो कुछ मुझे दूसरों के अन्दर खटकता है वह वही कार्य है जिसे मुझे स्वयं अपने अन्दर करना है।"

और सम्भवतः कोई व्यक्ति यदि स्वयं अपने अन्दर कोई सच्ची पूर्णता वहन करे तो वह अक्सर उसे दूसरों में भी देखेगा।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. २८-२९

जब तुम्हारे पास थोड़ा समय हो

जीवन के प्रवाह में कितनी ही बार एक तरह का ख़ालीपन आता है, एक व्यस्तताहीन क्षण, कुछ मिनट, कभी-कभी ज़्यादा भी। तब तुम क्या करते हो? उसी क्षण तुम दिल बहलाव की चेष्टा करते हो और अपना समय काटने के लिए कोई-न-कोई मूर्खता खोज निकालते हो। यह एक सामान्य तथ्य है, मनुष्य, छोटे से लेकर बड़े तक, अपने समय का अधिकांश अपने-आपको ऊब से बचाने में बिताता है। उसके लिए ऊब ही सबसे बड़ा हौआ है और ऊब से बचने का उपाय है, बहुत सारी मूर्खताएँ करना।

ख़ैर, एक और उपाय है जो उससे कहीं अधिक अच्छा है। वह है—स्मरण करना।

जब तुम्हारे पास थोड़ा समय हो, चाहे वह एक घण्टा हो या कुछ मिनट, अपने-आपसे कहो : "आख़िर! अपने-आपको केन्द्रित करने का, अपने-आपको इकट्ठा करने का, अपने जीवन के मूल कारण को फिर से जीने का और जो 'सत्य' और 'सनातन' है उसे अपने-आपको समर्पित करने का मेरे पास समय है।" हर बार जब तुम बाहरी परिस्थितियों से परेशान न होओ तब अगर तुम यह करने की सावधानी बरतो तो देखोगे कि तुम राह पर बहुत जल्दी बढ़ते जा रहे हो। अपना समय बकवास में, अनावश्यक चीज़ें करने में और ऐसी चीज़ें पढ़ने में गँवाने की जगह, जो चेतना को गिराती हैं—यह तो अच्छी-से-अच्छी दशाओं के चुनाव की बात है, मैं दूसरी मूर्खताओं की बात ही नहीं करती जो बहुत ज़्यादा गम्भीर

होती हैं—अपने को चकराने की जगह, ऐसा करने की जगह कि समय, जो पहले से ही कम है, और भी कम हो जाये और फिर देखना कि जीवन के अन्त में हमने तीन-चौथाई अवसर खो दिये हैं—तब फिर तुम दोनों हाथों से कौर निगलने लगते हो, लेकिन उससे कोई फ़ायदा नहीं होता—ज़्यादा अच्छा है संयत होना, सन्तुलित होना, धैर्यवान् होना, शान्त होना और दिये गये अवसर को कभी न गँवाना। इसका मतलब है कि तुम्हारे सामने जो मिनट व्यस्तताहीन होता है उसका सच्चे ध्येय के लिए उपयोग करना।

जब तुम्हारे पास करने के लिए कुछ न हो तो तुम क्षुब्ध हो उठते हो, तुम भागते फिरते हो, मित्रों से मिलने चले जाते हो, घूमने निकल पड़ते हो—मैं मात्र अच्छी चीज़ों की ही बात कर रही हूँ, मैं उन चीज़ों की बात नहीं करना चाहती जो स्पष्ट रूप से ऐसी हैं जिन्हें नहीं करना चाहिये—इन सबकी जगह शान्तिपूर्वक, तुम्हारे लिए जो सम्भव हो उसके अनुसार, आकाश के नीचे, समुद्र के सामने या पेड़ों-तले बैठ जाओ (यहाँ तो सब कुछ है), और इनमें से किसी एक चीज़ को सिद्ध करने की कोशिश करो, यह समझने की कोशिश करो कि तुम क्यों जीवित हो और यह सीखने की कोशिश करो कि किस तरह जीना चाहिये। इस पर विचार करो कि तुम क्या करना चाहते हो और क्या करना चाहिये। 'अज्ञान', 'मिथ्यात्व' और 'दुःख', जिसमें तुम जीते हो, उससे बच निकलने का उत्तम उपाय क्या है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. २७८-७९

प्रसन्नता

सुसुखं वत! जीवाम येसं नो नत्थि किञ्चनं।
पीतिभक्खा भविस्साम देवा आभस्सरा यथा।।

जिन हम लोगों के पास कुछ नहीं, अहो! वे हम कितने सुख से जीवन बिता रहे हैं। हम ज्योतिर्मय देवताओं की भाँति प्रीतिभक्ष्य (प्रीति ही भोजन है जिनका) हैं।

इन श्लोकों में से यह बहुत सुन्दर है—"सुखी है वह जिसके पास कुछ भी नहीं है, ओजस्वी देवों के आनन्द से वह अपना पोषण करेगा।" अपने अधिकार में कुछ नहीं होने का यह अर्थ बिलकुल नहीं होता कि किसी

वस्तु का उपयोग न करना, किसी वस्तु का अपने पास न होना। "सुखी वह है जिसके पास कुछ नहीं है," यह वही है जिसके अन्दर अधिकार की भावना नहीं है, यह ऐसा व्यक्ति है जो, चीज़ें उसके पास आयें तो उनका उपयोग कर सकता है, यह जानते हुए कि वे उसकी नहीं हैं, वे परम प्रभु की हैं, और जो, इसी कारण, जब चीज़ें दूर चली जायें तो उनके लिए दुःखी नहीं होता। और उसे यह एकदम स्वाभाविक लगता है कि भगवान् ने जो चीज़ें उसे दी थीं उन्हें वापस ले लें और दूसरों को दे दें। ऐसा व्यक्ति चीज़ों का उपयोग करते समय और चीज़ों की अनुपस्थिति में समान रूप से सुखी रहता है। जब वे तुम्हारे पास होती हैं तो तुम उन्हें भागवत कृपा के उपहार के रूप में स्वीकार करते हो; और जब वे तुम्हें छोड़ कर चली जाती हैं, जब वे तुमसे दूर होती हैं तब तुम अभाव के आनन्द में रहते हो क्योंकि अधिकार की यह भावना ही तुम्हें चीज़ों के प्रति आसक्त रखती है, तुम्हें ग़ुलाम बनाती है, वरना तुम हमेशा निरन्तर आनन्द की स्थिति में और चीज़ों की उस निरन्तर गति में रह सकते हो जो आती हैं और निकल जाती हैं—और जो अपने साथ, एक ही साथ, जब वे होती हैं तो समृद्धि की भावना लाती हैं, जब चली जाती हैं तो अनासक्ति का आनन्द लाती हैं।

आनन्द! आनन्द, इसका अर्थ है 'सत्य' में जीना, इसका अर्थ है 'असीम' के साथ ऐक्य में जीना, सच्चे जीवन के साथ जीना, उस प्रकाश में जीना, जो कभी बुझता नहीं। आनन्द, उसका अर्थ है स्वतन्त्र होना, सच्ची स्वतन्त्रता में स्वतन्त्र होना, दिव्य इच्छा-शक्ति के साथ अपरिवर्तनशील, निरन्तर ऐक्य की स्वतन्त्रता में रहना।

देवता वे हैं जो अमर हैं, पार्थिव जीवन के उतार-चढ़ाव के बन्धन में नहीं हैं, उसके अन्दर जो कुछ सँकरा, तुच्छ, अवास्तविक और मिथ्या है उसके साथ बँधे नहीं हैं। देवता वे हैं जो 'ज्योति' की ओर मुड़े हुए हैं, 'शक्ति' में और 'ज्ञान' में जीते हैं। बुद्ध यही कहना चाहते हैं, वे धर्म के देवों की ओर संकेत नहीं कर रहे। ये ऐसी सत्ताएँ हैं जिनका चरित्र दिव्य है, जो मानव शरीर में जी सकते हैं, किन्तु अज्ञान और मिथ्यात्व से मुक्त होकर।

जब तुम्हारे पास शेष कुछ भी न रहे तो तुम विश्व के जितने विशाल बन सकते हो।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. २८०, २८२-८३

समझदार होना

मुझे हमेशा लगता है कि समझदार बनने के लिए लोग जो कारण देते हैं वे बड़े तुच्छ होते हैं। "यह मत करो, यह तुम्हें दुःख देगा; वह मत करो, वह तुम्हारे अन्दर भय जगायेगा"... और चेतना अधिक-से-अधिक शुष्क होती जाती है, वह कंटकाकीर्ण हो जाती है क्योंकि उसे दुःखी होने से डर लगता है या कष्ट से डर लगता है।

मैं यह पसन्द करूँगी कि तुम यह कहो कि चेतना की एक स्थिति है—जिसे तुम निरन्तर अभीप्सा और आन्तरिक प्रयास के द्वारा प्राप्त कर सकते हो—जहाँ आनन्द बिना मिलावट के रहता है और प्रकाश बिना परछाईं के, और जहाँ डर की सब सम्भावना अदृश्य हो जाती है; यह वह स्थिति है जहाँ तुम स्वयं अपने लिए नहीं जीते, पूर्ण विश्वास के साथ अपने प्रति जो ज़िम्मेदारियाँ हैं उनको निभाते हुए सारा भार भगवान् को देकर—जो तब भार नहीं रहता, बल्कि जहाँ तुम जो कुछ भी करो, जो कुछ भी अनुभव करो, सभी क्रियाएँ परम प्रभु को एक अर्घ्य के रूप में दी जाती हैं—रहते हो।

अपने विषय में सोचना न पड़े, अपनी ज़िम्मेदारी उठानी न पड़े, यह एक अवर्णनीय आनन्द है। यह चिन्ता करना कि क्या करना चाहिये, और क्या नहीं करना चाहिये, तुम्हारे लिए क्या अच्छा है, तुम्हारे लिए क्या बुरा है, किस चीज़ से बचना चाहिये, किस चीज़ को प्राप्त करना चाहिये, यह सब सोचना कितना उबाऊ है; लेकिन जब तुम इस तरह जीते हो, पूरी तरह खुले हुए, सूर्य के सामने खिलते फूल की तरह, 'सर्वोच्च चेतना' के सामने, 'सर्वोच्च ज्ञान', 'सर्वोच्च प्रकाश', 'सर्वोच्च प्रेम' के सामने, जो सब कुछ जानता है, सब कुछ कर सकता है, जो तुम्हारा उत्तरदायित्व ले लेता है और तुम्हें किसी प्रकार की चिन्ता नहीं रहती, यह है आदर्श स्थिति।

तो फिर, व्यक्ति ऐसा करते क्यों नहीं?

तुम उसके बारे में सोचते ही नहीं, तुम यह करना भूल जाते हो, पुरानी आदतें लौट आती हैं और अधिक महत्त्वपूर्ण है, निश्चेतना या अवचेतना के किसी भाग में छिपा हुआ या उनके पीछे, यह धोखेबाज़ सन्देह जो तुम्हारे कान में चुपके से आकर कहता है: "ओह! अगर तुम सावधान नहीं रहे तो दुःख आयेगा। अगर तुम अपने ऊपर निगरानी करना भूल गये तो पता नहीं तुम्हारे ऊपर क्या बीते..." और तुम इतने मूर्ख हो, इतने मूर्ख, इतने

अन्धकारमय हो, इतने बुद्धू हो कि उसकी सुनते हो—फिर अपने ऊपर ध्यान देने लगते हो, और सब नष्ट हो जाता है।

अपने कोषाणुओं में फिर से, थोड़ी-बहुत समझदारी, थोड़ी-बहुत सद्‌बुद्धि और एक बार उँडेलनी होगी और अपनी चिन्ता न करना फिर से सीखना होगा।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. २८५-८७

एकदम आवश्यक शब्द ही बोलो

मेरा एक सुझाव है कि तुममें से प्रत्येक—ओह! बहुत देर तक नहीं, दिन में एक घण्टा यह कोशिश करे कि एकदम आवश्यक शब्द ही बोले। न एक कम न एक ज़्यादा।

तुम अपने जीवन का एक घण्टा लो, वह जो तुम्हें सबसे अधिक सुविधाजनक लगे, और उस समय तुम अपने-आपका बहुत ही ध्यानपूर्वक निरीक्षण करो और वही शब्द बोलो जो एकदम अनिवार्य हों।

शुरू में, सबसे पहली कठिनाई यह जानने की होगी कि क्या एकदम अनिवार्य है और क्या नहीं। यह अपने-आपमें एक अध्ययन होगा; और दिन-पर-दिन तुम अच्छा करते चलोगे।

बाद में तुम देखोगे कि जब तक तुम कुछ नहीं बोलते, नितान्त मौन रहना बहुत मुश्किल नहीं होता, किन्तु जैसे ही तुम बोलना शुरू करते हो हमेशा, या प्रायः हमेशा, ऐसे दो-तीन या दस-बीस बेकार शब्द बोल जाते हो जिन्हें बोलना एकदम आवश्यक न था।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. २८९-९०

अच्छाई के लिए अच्छा बनो

हाँ, अपने-आपको सब्ज़बाग़ न दिखाते रहना चाहिये कि अगर हम सच्ची राह का अनुसरण करना चाहते हैं, अगर हम नम्र हैं, अगर हम पवित्रता को खोजते हैं, अगर हम निःस्वार्थ हैं, अगर हम एकान्त में रहना चाहते हैं और शुद्ध विवेक चाहते हैं तो चीज़ें आसान होंगी...। एकदम उलटी बात है! जब हम आन्तरिक और बाह्य पूर्णता की ओर बढ़ने लगते हैं तब उसी समय हमारी मुसीबतें शुरू हो जाती हैं।

मैंने बहुत बार लोगों को यह कहते सुना है: "ओह! अब जब मैं अच्छा बनने की कोशिश करता हूँ तो ऐसा लगता है कि सब मेरे साथ दुष्टतापूर्ण व्यवहार करते हैं!" लेकिन यह ख़ास तुम्हें यह सिखाने के लिए होता है कि स्वार्थ-भरे उद्देश्य के साथ अच्छा नहीं बनना चाहिये, इसलिए भी अच्छा नहीं बनना चाहिये कि दूसरे तुम्हारे साथ अच्छा व्यवहार करें—अच्छा बनने के लिए अच्छा बनना चाहिये।

हमेशा एक ही पाठ सीखना होता है: जितना अच्छा कर सकते हो करते चलो, जितना कर सको, उससे अधिक अच्छा करो; लेकिन परिणाम की आशा के बिना, परिणाम के बारे में सोचे बिना। यह मनोवृत्ति, अपने अच्छे कार्य के लिए पुरस्कार की आशा करना—अच्छा इसलिए बनना कि हम सोचते हैं कि उससे जीवन अधिक सरल होगा—अच्छे कार्य के सारे मूल्य को घटा देता है।

अच्छाई के प्रेम के कारण अच्छा बनना चाहिये, ईमानदारी के प्रेम के कारण ईमानदार होना चाहिये, पवित्रता के प्रेम के कारण पवित्र होना चाहिये और निःस्वार्थता से प्रेम के कारण निःस्वार्थ होना चाहिये; तब तुम राह पर आगे बढ़ोगे, यह बात निश्चित है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. २९५-९६

स्वतन्त्रता तथा आनन्द

बुद्ध ने कहा है या उनसे कहलवाया गया है कि जब तुम सब इच्छाओं से मुक्त हो जाते हो तो स्वाभाविक रूप से ही असीम आनन्द में प्रवेश पा लेते हो। शायद यह परमानन्द कुछ रूखा-सूखा है और कम-से-कम मुझे तो राह पर सबसे जल्दी ले जाने वाला मार्ग नहीं लगता।

यदि तुम्हें समस्या से शुरू में ही निपटना हो तो साहस और दृढ़ता से कूद पड़ो और इच्छाओं के पीछे लम्बी, श्रमसाध्य, कष्टकर और धोखा देने वाली मृगतृष्णा के पीछे दौड़ने की जगह, सरलता से, पूर्ण रूप से, बिना शर्त के अपने-आपको 'परम सत्' को, 'परम संकल्प' को, 'परम आत्मा' को दे दो। उत्साह के साथ अपनी सारी सत्ता को और सत्ता के सब भागों को बिना हिसाब किये भगवान् को दे देना—यही अहं से छूटने का सबसे छोटा रास्ता और सबसे मौलिक उपाय है। तुम कहोगे कि यह करना

मुश्किल है, लेकिन कम-से-कम इसमें ऊष्मा, उमंग, उत्साह, ज्योति, सौन्दर्य हैं, इसमें एक उमंग-भरा और सर्जनात्मक जीवन है।

यह बात सच है कि इच्छा के बिना अहं को प्रश्रय देने के लिए कोई ख़ास चीज़ नहीं रहती और तुम्हें यह प्रतीति होती है कि चेतना इतनी ज़्यादा कंटकाकीर्ण बन जाती है कि अगर अहं मिट्टी में मिल जाये तो तुम्हारे स्वत्व की कोई चीज़ भी मिट्टी में मिल जाती है, और तुम निर्वाण में जाने के लिए तैयार हो जाते हो जो विशुद्ध रूप से और सीधा-सादा विनाश है।

लेकिन हम यहाँ जिसे सच्चा निर्वाण मानते हैं वह है, परम प्रभु की गरिमा में अहं का अदृश्य हो जाना। और इस उपाय को मैं सकारात्मक उपाय कहती हूँ, सर्वांगीण, समग्र, सम्पूर्ण, बिना कुछ बचाये, बिना व्यापार का आत्म-दान।

इस घटना-मात्र से ही कि तुम अपने विषय में न सोच कर, केवल अपने लिए न जीकर, केवल अपने लिए कुछ न करके, जो अधिक-से-अधिक सुन्दर है, ज्योतिर्मय है, आनन्दमय है, शक्तिमय है, करुणामय है, असीम है, उसके विषय में सोचते हो, इतना गभीर आनन्द देता है कि उसकी तुलना और किसी भी चीज़ से नहीं की जा सकती।

इसी एक चीज़ का मूल्य है... जिसके लिए **प्रयत्न** किया जाना चाहिये। बाक़ी सब तो समय बिताना है।

एक पहाड़ पर धीरे-धीरे, मेहनत से, क़दम-क़दम करके, घूम-फिरकर सदियों में चढ़ पाने और अदृश्य पंखों को खोल कर सीधा शिखर तक उड़ जाने में यही फ़र्क है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. ३०१-०२

अकेले रहना

हमने यह देखा है कि जो लोग जंगल में जाकर अकेले रहते हैं उनमें से अधिकतर उन सब प्राणियों और उन सब पौधों के मित्र बन जाते हैं जो उनके आस-पास होते हैं; पर यह यथार्थ में वह एकाकीपन नहीं है जो तुम्हें आन्तरिक ध्यान में प्रवेश करने की और 'परम सत्य' के साथ तादात्म्य में जीने की शक्ति देता है। शायद यह अधिक आसान हो जब परिस्थितियों के दबाव के कारण तुम्हारे पास करने के लिए कुछ भी न हो, लेकिन

मुझे यकीन नहीं है। व्यक्ति हमेशा कुछ-न-कुछ काम खोज निकालेगा और जीवन के अपने अनुभव के अनुसार मुझे लगता है कि भागवत 'कृपा' ने हमें जो परिस्थितियाँ दी हैं उन्हें रखते हुए अगर हम मुसीबतों के बीच अपने स्वभाव के ऊपर प्रभुत्व पा सकें, अगर शाश्वत उपस्थिति के साथ आन्तरिक रूप से एकाकी रहने का प्रयत्न करें तो हमें जो सिद्धि प्राप्त होगी वह अधिक सच्ची, अधिक गभीर और अधिक स्थायी होगी।

मुसीबतों को जीतने के लिए उनसे भागना कोई हल नहीं है। यह बड़ा लुभावना है। जो आध्यात्मिक जीवन की खोज में हैं उनमें कोई चीज़ होती है जो कहती है: "ओह! एकदम अकेले किसी पेड़ के नीचे जा बैठना, ध्यानमग्न रहना, बोलने या कुछ करने के प्रलोभन में न पड़ना, यह कितना अच्छा होगा!" क्योंकि इस भाव में एक बहुत मज़बूत रचना है, लेकिन वह है बहुत अधिक भ्रान्तिपूर्ण।

सबसे अच्छे ध्यान वे होते हैं जो तुम हठात् करते हो, क्योंकि वे तुम पर अनिवार्य आवश्यकता की तरह हावी हो जाते हैं। तुम अपने-आपको एकाग्र किये बिना, ध्यान किये बिना, बाहरी रंग-रूप के परे देखे बिना नहीं रह सकते। और यह आवश्यक नहीं है कि यह ध्यान जंगल के एकान्त में ही तुम्हें पकड़े, यह तब आता है जब तुम्हारे अन्दर कोई चीज़ तैयार हो, जब वह समय आ जाये, जब सच्ची आवश्यकता हो, जब भागवत करुणा और कृपा तुम्हारे साथ हों।

मेरी समझ में मानवजाति ने प्रगति की है और सच्ची विजय वह है जिसे वह जीवन में प्राप्त कर सके।

सब परिस्थितियों के बीच 'शाश्वत' और 'असीम' के साथ कैसे अकेले रहा जाये, तुम्हें यह जानना चाहिये। सभी व्यस्तताओं के बीच परमेश्वर को साथी के रूप में रख कर स्वतन्त्र रहना जानना चाहिये। यही वास्तव में सच्ची विजय है। **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ३, पृ. ३११-१२

पथ पर आगे बढ़ना

अगर दुर्भावना से भरे लोग तुम्हारे बारे में बेहूदा बातें करें और तुम उनसे चिन्तित हो जाओ, दुःखी हो जाओ या यहाँ तक कि निराश हो जाओ तो तुम मार्ग पर बहुत आगे न बढ़ पाओगे। और जब ये चीज़ें तुम्हारे पास

आती हैं तो इसलिए नहीं कि तुम अभागे हो या तुम्हारा भाग्य सुखमय नहीं है; बल्कि, इसके विपरीत, इसलिए कि दिव्य 'चेतना' और दिव्य 'कृपा' तुम्हारे निश्चय को गम्भीरता से लेती हैं और परिस्थितियों को रास्ते के रोड़े बनने देती हैं, यह देखने के लिए कि क्या तुम्हारा निश्चय सच्चा है और क्या तुम मुसीबतों का सामना करने के लिए काफ़ी मज़बूत हो।

इसलिए, अगर कोई तुम्हारा मज़ाक उड़ाये या कुछ ऐसी बात कहे जो बहुत सद्भावनापूर्ण न हो तो करने-लायक़ सबसे पहली चीज़ यह है कि अपने अन्दर देखो कि कौन-सी ऐसी दुर्बलता या अपूर्णता है जिसने इस तरह की वस्तु को आने दिया। तुम जिसे अपना उचित मूल्य समझते हो लोग उसकी प्रशंसा नहीं करते—इससे निराश न होओ, क्रोध न करो, दुःखी मत होओ। इसके बदले तुम दिव्य 'कृपा' का आभार मानो कि उसने तुम्हारी उस दुर्बलता या अपूर्णता या विकृति पर उँगली रख दी है जिसे तुम्हें ठीक करना है।

अतः, दुःखी होने की जगह, तुम पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो सकते हो और लोग तुम्हें जो हानि पहुँचाना चाहते थे उसके स्थान पर लाभ, एक बड़ा लाभ उठा सकते हो।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. ३२०-२१

पीछे हटना

तुममें से अधिकतर लोग अपनी सत्ता के ऊपरी भाग में रहते हो और बाहरी प्रभाव के स्पर्श के लिए खुले होते हो। तुम लोग इस प्रकार रहते हो मानों अपने शरीर से बाहर निकले हुए हो और जब तुम ऐसे किसी अप्रिय व्यक्ति से मिलते हो जो वैसे ही निकला हुआ होता है, तब तुम उद्विग्न हो उठते हो। इस सारी तकलीफ़ का कारण यह होता है कि तुम पीछे की ओर हट आने के अभ्यासी नहीं होते। तुम्हें हमेशा अपने अन्दर की ओर वापस हट आना चाहिये—अन्दर गहराई में पैठ जाना सीख लो—पीछे हट जाओ और तुम सुरक्षित हो जाओगे। बाहरी जगत् में जो सतही शक्तियाँ काम कर रही हैं उनके हाथों में अपने-आपको मत छोड़ो। अगर तुम्हें कोई कार्य बहुत जल्दी भी करना हो तो एक क्षण के लिए पीछे हट आओ, तब तुम देखोगे और आश्चर्यचकित हो जाओगे कि कितनी जल्दी और कितनी

अधिक सफलता के साथ तुम्हारा काम पूरा हो जाता है। अगर कोई तुमसे नाराज़ हो तो उसके क्रोध के स्पन्दनों के जाल में मत फँस जाओ, बल्कि पीछे की ओर हट-भर आओ और उसका क्रोध कोई आधार या प्रत्युत्तर न पाने के कारण काफ़ूर हो जायेगा। सर्वदा अपनी शान्ति बनाये रखो, उसे खोने के सभी प्रलोभनों से बचो। बिना पीछे हटे कभी कोई निर्णय मत करो, बिना पीछे हटे कभी एक शब्द तक मत बोलो, बिना पीछे हटे कभी किसी काम में मत कूदो। सामान्य संसार से सम्बन्धित जो कुछ भी है वह सब क्षणिक और नश्वर है, इसलिए उसमें ऐसी कोई चीज़ नहीं जिसके कारण तुम्हें बेचैन होने की ज़रूरत हो। जो कुछ स्थायी, सनातन, अमर और अनन्त है—वही वास्तव में इस योग्य है कि हम उसे पायें, जीतें, अपने अधिकार में रखें। और वह है 'दिव्य ज्योति', 'दिव्य प्रेम', 'दिव्य जीवन'—फिर वही है 'सर्वोच्च शान्ति', 'पूर्ण आनन्द' और पृथ्वी पर प्राप्त 'समस्त प्रभुत्व' जिसकी मुकुट-मणि है 'पूर्ण अभिव्यक्ति'। जब तुम समझ जाओगे कि सभी वस्तुएँ सापेक्ष हैं, तो कुछ भी क्यों न घटे, तुम पीछे हट सकोगे और वहाँ से उसे देख सकोगे; उस समय तुम शान्त-स्थिर रह कर भागवत शक्ति को पुकार सकते और उत्तर की प्रतीक्षा कर सकते हो। उस समय तुम ठीक-ठीक यह जान जाओगे कि तुम्हें क्या करना चाहिये। अतएव, याद रखो कि जब तक तुम बहुत शान्त-स्थिर नहीं हो जाओगे तब तक तुम उत्तर नहीं पा सकोगे। इस आन्तरिक शान्ति का अभ्यास करो, कम-से-कम छोटा-सा आरम्भ कर दो और तब तक अभ्यास करते रहो जब तक तुम्हें शान्त रहने की आदत न पड़ जाये।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १७१-७२

सच्ची मनोवृत्ति

सच्ची मनोवृत्ति न तो तपस्वी बनना है और न कामना में रस लेना है। सच्ची मनोवृत्ति है, जो कुछ मैं दूँ उसे पूरी सरलता के साथ लेना, उसके साथ पूरी तरह सन्तुष्ट रहना, न तो ज़्यादा की माँग करना और न जो दिया गया है उसे अस्वीकार करना। देने-लायक़ यही सच्चा उदाहरण है जो दूसरों को उनके साधक होने के कर्तव्यों को समझने में सहायता देगा।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. ५१

विनम्र होना

सच्ची नम्रता इसमें है कि तुम यह जानो कि केवल 'परम चेतना', 'परम संकल्प' का ही अस्तित्व है और 'मैं' **नहीं हूँ**।

नम्र होने का मन, प्राण और शरीर के लिए अर्थ है यह कभी न भूलना कि **भगवान् के बिना** वे कुछ नहीं जानते, कुछ नहीं हैं और कुछ नहीं कर सकते। भगवान् के बिना वे अज्ञान, अव्यवस्था और असमर्थता के सिवा कुछ नहीं हैं। केवल भगवान् ही 'सत्य', 'जीवन', 'शक्ति', 'प्रेम' और 'सुख-शान्ति' हैं।

अतः, मन, प्राण और शरीर को हमेशा के लिए यह सीख लेना और अनुभव कर लेना चाहिये कि वे भगवान् को केवल उनके सार-तत्त्व में ही नहीं बल्कि उनकी क्रिया और अभिव्यक्ति में भी समझने या उनका मूल्यांकन करने में एकदम असमर्थ हैं।

यही एकमात्र नम्रता है और इसके साथ आती हैं अचञ्चलता और शान्ति।

और यही सब प्रकार के विरोधी आक्रमणों के आगे सबसे निश्चित ढाल है। वस्तुतः मनुष्य में 'विरोधी शक्ति' हमेशा घमण्ड के दरवाज़े को खटखटाती है क्योंकि यही दरवाज़ा खुल कर उसे अन्दर आने देता है।

तुम्हारा व्यक्तिगत मूल्य या निजी उपलब्धि कुछ भी क्यों न हो, योग में पहला आवश्यक गुण है **नम्रता**।

सचमुच सच्ची नम्रता हमारा रक्षाकवच है—यह अहंकार के अनिवार्य विलयन के लिए सबसे निश्चित मार्ग है।

नम्रता और सच्चाई सबसे अच्छे रक्षाकवच हैं। उनके बिना एक-एक पग ख़तरनाक है, उनके साथ विजय निश्चित है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. १६८-६९

अपने अहं को उतार फेंकना

अगर यही परिणाम हो तो सारी सृष्टि, यह सारी वैश्व अभिव्यक्ति अधिक-से-अधिक एक भद्दा मज़ाक मालूम होती है। यदि इससे बाहर ही निकलना है तो फिर इसे शुरू ही क्यों किया जाये! यदि यह केवल तुम्हें यह

सिखाने के लिए है कि इसमें से कैसे बाहर निकला जा सकता है तो इतना संघर्ष करने का, इतना दुःख भोगने का क्या लाभ, ऐसी सृष्टि बनाने का क्या लाभ जो कम-से-कम अपने बाह्य रूप में इतनी दुःखान्त और नाटकीय हो—तब तो आरम्भ न करना ही कहीं अधिक अच्छा होता।

लेकिन यदि तुम चीज़ों की एकदम गहराई तक जाओ, केवल अहंभाव से ही विमुक्त नहीं, बल्कि अहं से भी विमुक्त होकर अपने-आपको पूरी तरह, बिना कुछ बचाये, इतनी सम्पूर्णता और अनासक्ति के साथ समर्पित कर दो कि तुम परम प्रभु की योजना को समझने के योग्य बन जाओ तो तुम जान जाओगे कि यह एक भद्दा मज़ाक **नहीं** है, आरम्भिक बिन्दु तक वापस आने के लिए टेढ़ा-मेढ़ा, थोड़ा घिसा-पिटा रास्ता **नहीं** है। इसके विपरीत, यह तो सारी सृष्टि को जीने का आनन्द, जीने का सौन्दर्य, जीने की महिमा, एक उदात्त जीवन की भव्यता और उस आनन्द, सौन्दर्य और महिमा की सतत प्रगतिशील वृद्धि सिखाने के लिए है। तब हर चीज़ का अर्थ होता है, और तब संघर्ष करके, दुःख भोग कर तुम्हें पछतावा नहीं होता। तुम्हारे अन्दर केवल दिव्य लक्ष्य को प्राप्त करने का उत्साह होता है और उस प्राप्ति के लिए लक्ष्य और विजय की **निश्चिति** के साथ तुम सिर के बल कूद पड़ते हो।

लेकिन यह जान सकने के लिए अहंवादी होना छोड़ना पड़ेगा, परम उत्स से कट कर, अपने में सिमट-सिकुड़ कर एक अलग व्यक्ति होना छोड़ना होगा। सबसे बढ़ कर ज़रूरी है : अपने अहं को उतार फेंकना। और तब तुम अपने सच्चे लक्ष्य को पहचान सकोगे—और बस, यही एक तरीक़ा है!

अपने अहं को उतार फेंकना, एक व्यर्थ परिधान की तरह गिर जाने देना।

फल को देखते हुए इसके लिए प्रयत्न करना सार्थक है। और फिर पथ पर तुम अकेले नहीं हो। यदि तुम्हारे अन्दर भरोसा हो तो तुम्हें सहायता मिलती है।

यदि एक निमिष के लिए भी 'कृपा' के साथ तुम्हारा सम्पर्क हुआ है, उस अलौकिक 'कृपा' के साथ जो तुम्हें साथ लिये चलती है, पथ पर दौड़ाये लिये जाती है, तुम्हें यह भी भुला देती है कि तुम्हें जल्दी करनी है, यदि उस 'कृपा' के साथ तुम्हारा निमिष-मात्र के लिए भी सम्पर्क हुआ है तो

तुम्हें भूल न जाने का प्रयास करना चाहिये। और, जिसके जीवन में गुत्थियाँ नहीं हैं ऐसे शिशु की निष्कपटता और सरलता के साथ, अपने-आपको 'कृपा' के हाथ में सौंप दो और उसे कार्य करने दो।

आवश्यकता है इस बात की कि जो कुछ प्रतिरोध करे उसकी मत सुनो; जो खण्डन करे उसका विश्वास न करो—एक भरोसा रखो, सच्चा भरोसा, एक विश्वास जिसके द्वारा तुम अपने-आपको पूरी तरह बिना हिसाब-किताब के, बिना सौदेबाज़ी के दे दो। भरोसा! ऐसा भरोसा जो कहे, "यह कर दो, मेरे लिए यह कर दो, मैं तुम्हारे ऊपर छोड़ता हूँ।"

यही है सर्वश्रेष्ठ तरीक़ा।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. ४६३-६४

सच्ची प्रगति का चिह्न

अगर आपके चारों ओर, उदाहरण के लिए, विवेकानन्द जैसे लोग होते तो आपका काम ज़्यादा आसान होता, है न? हम जैसे अपरिष्कृत लोगों की जगह?... (हँसी)

सम्भवतः वे ज़्यादा दुर्दान्त होते!... क्योंकि जिसे कुछ सिद्धि प्राप्त हो चुकी है उसे विश्वास दिलाना सबसे कठिन होता है। उसे विश्वास होता है कि वह समस्त प्रगति से ऊपर है।

आवश्यक नहीं है। यह ज़रूरी नहीं है कि जिसे कुछ अनुभूति हो वह ज़्यादा आगे बढ़ा हुआ हो। उसके अन्दर सरलता और विनय का तथा सुनम्यता के पुट का अभाव होता है जो इस तथ्य से आता है कि व्यक्ति पूरी तरह विकसित नहीं है। व्यक्ति जैसे-जैसे बढ़ता है वैसे-वैसे दिमाग़ में कोई चीज़ स्फटिक बनने लगती है और यदि तुम बहुत अधिक प्रयास न करो तो वह ज़्यादा-ज़्यादा स्थिर होती जाती है और अन्त में पथरा जाती है। साधारणतः यही होता है, विशेष रूप से उन लोगों के साथ जिन्होंने किसी उपलब्धि के लिए कोशिश की है और उसमें सफलता पायी है, या जो यह विश्वास करने लगे हैं कि वे लक्ष्य तक जा पहुँचे हैं। बहरहाल, वह उनका निजी लक्ष्य था। वे वहाँ जा पहुँचे, उन्होंने उसे प्राप्त कर लिया। यह हो गया, वे वहाँ रहते हैं, वहाँ बस जाते हैं, और कहते हैं : "बस यही है।" वे

आगे और कुछ नहीं करते। उसके बाद वे चाहे दस वर्ष, बीस वर्ष, तीस वर्ष जीते रहें, पर वे ज़रा भी न हिलेंगे। वे वहाँ हैं, वे वहीं रहेंगे। इन लोगों में नमनीयता के उस भाव का एकदम अभाव होता है जो आगे बढ़ने के लिए, प्रगति करने के लिए ज़रूरी है। वे फँस जाते हैं, वे संग्रहालय में दिखाये जाने के लिए बड़ी अच्छी चीज़ें हैं, काम करने के लिए नहीं। वे ऐसे बहुत अच्छे नमूने हैं जिनसे यह मालूम होता है कि क्या किया जा सकता है, पर वे और कुछ करने के लिए उपादान नहीं हैं। अपने लिए, मैं स्वीकार करती हूँ कि मैं अपने काम के लिए किसी ऐसे को ज़्यादा पसन्द करूँगी जो बहुत कम जानता है, जिसने बहुत ज़्यादा परिश्रम नहीं किया, परन्तु जिसमें बहुत अभीप्सा है, बहुत सद्भावना है, जो अपने अन्दर इस ज्वाला का, आगे बढ़ने की आवश्यकता का अनुभव करता है। चाहे वह बहुत कम जानता हो, चाहे उसने उपलब्ध और भी कम किया हो, लेकिन अगर उसके अन्दर यह है तो वह बहुत अच्छा उपादान है जिसके साथ बहुत कुछ किया जा सकता है, बहुत आगे जाना सम्भव है। तुम्हें रास्ता मालूम होना चाहिये (यहाँ भी वही बात है जो तुम्हारे पुस्तकालय के लिए है), जाने के लिए तुम्हें रास्ता मालूम होना चाहिये। हाँ, साधारण जीवन में जब तुम्हें पहाड़ पर चढ़ना हो या किसी अनजान देश में जाना हो तो तुम किसी ऐसे आदमी को खोजते हो जो वहाँ हो आया हो, जो मार्गदर्शक हो। तुम उससे रास्ता दिखाने के लिए कहते हो। वही चीज़ है। अगर तुम पथ-प्रदर्शक का अनुसरण करो तो तुम उस व्यक्ति की अपेक्षा बहुत ज़्यादा तेज़ जा सकते हो जिसने प्रयास तो बहुत किया है, अपना ही रास्ता खोजा है, जिसे अपने ऊपर काफ़ी गर्व है, बहरहाल, जिसे यह लगता है कि वह लक्ष्य तक आ पहुँचा है, उसने जो ध्येय चुना था वहाँ तक अन्तिम रूप से आ पहुँचा है—और वह रुक जाता है, वहीं बस जाता है। और वहाँ से हिलता तक नहीं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. ३१३-१४

अपने-आपको बड़ा या छोटा, बहुत महत्त्वपूर्ण या एकदम नगण्य न समझो क्योंकि हम अपने-आपमें कुछ भी नहीं हैं। हमें भगवान् जो बनाना चाहते हैं वही बनने के लिए हमें जीना चाहिये। श्रीमाँ

"भगवान् क्या हैं?"—मुस्कुराती हुई, प्रकाशयुक्त विशालता।

दैनन्दिनी

जुलाई

१. बहुत सावधानी के साथ हमेशा शान्त-स्थिर और शान्तिपूर्ण रहो। एक सर्वांगीण समता अधिकाधिक पूर्णता के साथ तुम्हारी सत्ता में प्रतिष्ठित रहे। अपने मन को बहुत चञ्चल न होने दो, उसे अस्त-व्यस्त जीवन में न जीने दो, चीज़ों का बाहरी रूप-रंग देख कर निर्णय पर न कूद पड़ो; हमेशा समय लो, एकाग्र होओ और केवल शान्ति में ही निश्चय करो।

२. एक ही दिन में व्यक्ति अपने स्वभाव को नहीं जीत सकता। परन्तु धीरज और आग्रही संकल्प के साथ 'विजय' अवश्य आयेगी।

३. हाँ, शान्त रहो। हमें किसी भी चीज़ से उत्तेजित हुए बिना, अनिवार्य 'विजय' के बारे में श्रद्धा रखते हुए बस कार्य करते जाना चाहिये।

४. ... ख़ुशी भी उतनी ही छुतहा है जितना दुःख। इससे ज़्यादा उपयोगी और कुछ नहीं हो सकता कि तुम लोगों में सच्ची और गभीर प्रसन्नता की अग्नि जला सको।

५. बिलकुल निर्भय और शान्त रहना ही वह शर्त है जिसमें विरोधी शक्तियाँ कभी कोई हानि नहीं पहुँचा सकतीं।

६. अपनी अपूर्णताएँ और अपने दोष देख सकना ठीक है, लेकिन केवल इस शर्त पर कि इससे नयी प्रगति के लिए अधिक साहस आये, दृढ़ता में अधिक ऊर्जा आये और विजय तथा भावी पूर्णता के लिए अधिक मज़बूत निश्चिति आये।

७. प्रश्न : मेरी प्यारी माँ, सदा आपका बालक हूँ, मुझे अपना बालक, सच्चा बालक बना लीजिये।

उत्तर : हाँ मेरा सच्चा बालक जिसे मैं सदा अपनी बाँहों में रखती हूँ।

८. एकमात्र चीज़ जो तुम्हें करनी चाहिये वह है, शान्त, अक्षुब्ध बने रहना और पूरी तरह भगवान् की ओर मुड़े रहना; बाक़ी सब तो उनके हाथ में है।

९. निश्चय ही जब चारों तरफ़ कपट फैला हुआ हो तभी सचमुच निष्ठावान् रहने और आँधी से अप्रभावित होने और अविचलित होकर खड़े होने का समय होता है।

१०. मन जब विरोधी सुझावों से आक्रान्त हो तो न तो बेचैन हो उठो और न ही डरो बल्कि उन्हें बेवकूफ़ी मानो और ऐसे धकेल दो जैसे तुम मक्खी या मच्छर को भगा देते हो। फिर आक्रमण समाप्त होने तक बहुत शान्त रहो।

११. प्रत्येक अपनी प्रसन्नता की क्षमता अपने अन्दर लिये रहता है...।

१२. तुम हर चीज़ में प्रगति करने का अवसर पा सकते हो और प्रगति के लिए यह प्रयास उस चीज़ को—वह कुछ भी क्यों न हो—तुरन्त रुचिकर बना देता है।

१३. अपनी अभीप्सा में लगे रहो तो तुम्हारा स्वप्न चरितार्थ होगा।

१४. कभी उत्तेजित, उद्विग्न या विक्षुब्ध मत होओ। सभी परिस्थितियों के सामने पूरी तरह से अचञ्चल रहो। और फिर भी हमेशा सजग रहो ताकि जो प्रगति तुम्हें करनी है उसे तुम जान सको और उस प्रगति को समय नष्ट किये बिना कर सको।

१५. अर्पण का रूप चाहे जैसा हो, जब वह सच्चाई के साथ किया जाता है तो हमेशा अपने अन्दर भागवत प्रकाश की एक चिनगारी लिये रहता है जो पूर्ण सूर्य में विकसित हो सकती और समस्त सत्ता को आलोकित कर सकती है।

१६. साधक : मैं जानता हूँ कि मेरे अन्दर बहुत-सी ग़लत चीज़ें हैं, लेकिन कोई ख़ास आधारभूत गड़बड़ भी होनी चाहिये, माँ वह क्या है?
माताजी : तुम्हारे लिए कोई विशेष बात नहीं है। एक ही कठिनाई सभी मनुष्यों में मौजूद है—भौतिक मन का घमण्ड और उसकी अन्धता।

१७. साहसी बनो और अपने बारे में इतना अधिक न सोचो। तुम दुःखी और असन्तुष्ट इसलिए रहते हो क्योंकि तुम अपने छोटे-से अहंकार को अपनी तन्मयता का केन्द्र बना लेते हो। इन बीमारियों का बड़ा इलाज है—अपने-आपको भूल जाना।

१८. यदि तुम सचमुच शान्ति और आनन्द चाहते हो तो तुम्हारी सतत लगन होनी चाहिये : "मुझे ऐसी कौन-सी प्रगति करनी चाहिये ताकि

मैं भगवान् को जान सकूँ, उनकी सेवा कर सकूँ?"

१९. बच्चों को यह सिखाना चाहिये कि वे जो कुछ करें अच्छी तरह करने के आनन्द से करें, चाहे वह बौद्धिक काम हो या कलात्मक या शारीरिक, और विशेषकर यह सिखाना चाहिये कि काम कैसा भी क्यों न हो, अगर उसे यत्न और कुशलता से किया जाये तो उसकी अपनी गरिमा है।

२०. सच्चाई से काम में लग जाओ, देर-सवेर बाधाएँ दूर हो जायेंगी।

२१. तुम्हें अपनी अभीप्सा को और सारी विघ्न-बाधाओं को जीतने की इच्छा को अक्षुण्ण रखना चाहिये। तुम्हें भागवत कृपा और निश्चित विजय पर अटल श्रद्धा होनी चाहिये।

२२. आवेश में आकर काम करने की सम्भावना को रोकने के लिए शान्त रहो, अपने-आपको तटस्थ रख कर साक्षी की तरह निरीक्षण करो।

२३. अवसाद तीव्र अहंकार का चिह्न है। जब तुम पाओ कि वह तुम्हारे पास आ रहा है, अपने-आपसे कहो—"मुझे अहं की बीमारी लग गयी है, मुझे अपनी चिकित्सा करनी होगी।"

२४. प्रत्येक वस्तु में तुझे ढूँढ़ना, प्रत्येक परिस्थिति में तुझे अधिक-से-अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्त करने की इच्छा करना; इसी मनोवृत्ति में परम शान्ति, पूर्ण प्रसन्नता और सच्चा सन्तोष है।

२५. अधिक नमनीय बनो, अधिक विश्वास रखो। करने-योग्य कार्य यही है कि अपने-आपको किसी भी चीज़ से परेशान न होने दो।

२६. तुम्हारे हृदय में, प्राण में शान्ति बनी रहे।
हाँ, शान्ति, प्रकाश, शक्ति और आनन्द 'चेतना' में हमेशा तुम्हारे साथ रहते हैं। यह चेतना सदा तुम्हारे साथ रह कर तुम्हें मेरा भावभीना प्रेम प्रदान करती है।

२७. विजय सदा ही सुनिश्चित है—कठिनाई हो भी, तब भी विजय में शंका मत करो। —श्रीअरविन्द

२८. मानव स्वभाव के उथलेपन से सीमित होते हुए भी हम अभीप्सा करते हैं ऐसे ज्ञान के लिए जो जानता है, ऐसी शक्ति के लिए जो सब कुछ कर सकती है, ऐसे प्रेम के लिए जो सचमुच प्रेम करता है।

२९. ज़्यादा अच्छा है कि भीरु मत बनो; प्रत्येक परिस्थिति का सामना करो

और उस पर विजय पाने के लिए आवश्यक प्रयास करो। सहायता सदैव तुम्हारे साथ है, तुम्हें उससे लाभ उठाना सीखना होगा।

३०. एकाग्र मनोयोग के समुचित प्रशिक्षण के द्वारा व्यक्ति किसी भी क्रिया को सम्पादित करने की पूरी-पूरी क्षमता अनिवार्य रूप से विकसित कर सकता है।

३१. अन्ततः, छोटी-मोटी सतही चीज़ों का कोई महत्त्व नहीं रहता अगर इनकी तुलना उस लक्ष्य से की जाये जिसे धरती पर चरितार्थ करना है।

'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन'

नयी शिक्षा

हमारे अन्दर शिक्षा के बारे में नये विचार होने चाहियें क्योंकि सारे जगत् में वर्तमान शिक्षा-प्रणाली पूरी तरह असफल हो गयी है। और यह नयी विचार-धारा भारत से आनी चाहिये। क्यों? आज हम यही समझने की कोशिश करेंगे। हमें तीन मौलिक वस्तुओं के बारे में विचार करना चाहिये, पहला—हमारी शिक्षा का वर्तमान और भविष्य की दृष्टि से क्या लक्ष्य होना चाहिये। दूसरा यह कि उसे चरितार्थ करने का क्या तरीक़ा है और तीसरा यह कि अब जगत् एक सार्वभौम समाज बन गया है, शिक्षण-संस्थाओं को केवल शिक्षा नहीं देनी चाहिये बल्कि सामाजिक सेवाएँ भी विकसित करनी चाहियें ताकि वे उन लक्ष्यों को पा सकें जिन्हें वे शिक्षण-कार्यक्रमों से आरम्भ करें। मैं माताजी और श्रीअरविन्द की शिक्षा के प्रकाश में ये चीज़ें आपके सामने रखना चाहूँगा।

आरम्भ में हमें यह अनुभव करना चाहिये कि इतने सारे धर्म आये हैं, इतने सारे राजनीतिक विचार आये हैं, इतने सारे सामाजिक विचार आये हैं, इतने सारे शैक्षिक कार्यक्रम सामने आये हैं पर मानव समस्याएँ जैसी की तैसी बनी रहीं। अगर हम पुराने ढर्रे पर चलते रहें जो अपने-आपमें चाहे जितने अच्छे हों पर जो अतीत में असफल हो चुके हैं तो अब हम उनसे सफलता की आशा कैसे कर सकते हैं? अब हमें भूत को छोड़ कर

पूरी तरह नवीन विचार की ओर खिलना चाहिये।

समझने की दूसरी चीज़ यह है कि शिक्षा का लक्ष्य सृजन के, जीवन के लक्ष्य से भिन्न नहीं हो सकता। आख़िर सृष्टि का सृजन हुआ ही क्यों है? इसका क्या प्रयोजन है? शिक्षा को यह प्रयोजन पूरा करना चाहिये और उससे अलग होकर शिक्षा अपने-आपको कभी परिपूर्ण न कर सकेगी।

मनुष्य में एक मौलिक आवश्यकता होती है जो अनन्त काल से चली आ रही है और वह है सुख की खोज, ज्ञान की खोज, शक्ति और अमरता की खोज। यदि अमरता की खोज हमेशा मनुष्य से बचती आयी है तो क्या इसका यह मतलब होगा कि मनुष्य कभी अमर न हो पायेगा जिसके लिए वह हमेशा खोज करता आया है? क्या वह कभी अमरता न पा सकेगा जिसके लिए वह हमेशा से स्वप्न लेता आया है, और आत्मा की चरितार्थता के द्वारा प्रयास करता रहा है? क्या यह उपलब्धि अमरता लायेगी? परन्तु आत्मा तो पहले ही अमर है। तब फिर वह कौन-सी अमरता है जिसे हम आत्मा की उपलब्धि द्वारा पाते हैं? यह अमरता भौतिक होनी चाहिये। श्रीअरविन्द ने कहा है कि मृत्यु हमसे एक प्रश्न पूछती है—तुम जिस प्रयोजन से आये हो क्या तुमने उसे पूरा कर लिया है? मृत्यु हममें से हर एक से यही प्रश्न करती है। हमारे यहाँ आने का प्रयोजन क्या है? हम धरती पर किसलिए हैं? शिक्षा को इस प्रश्न का उत्तर देना चाहिये।

श्रीअरविन्द इस प्रश्न का आश्चर्यजनक उत्तर देते हैं। उनकी चीज़ें पढ़ने से पहले मैंने कभी यह उत्तर न पाया था। तुम लोगों के सामने मैं यही उत्तर रखना चाहता हूँ। इसमें तीन प्रश्नों के उत्तर साथ-ही-साथ आ जाते हैं। वह उत्तर हमें बतलाता है कि सृष्टि का क्या प्रयोजन है, वह हमें बतलाता है कि हम व्यक्तिगत रूप से ऊँचे-से-ऊँचा क्या पा सकते हैं। वह हमें यह भी बतलाता है कि सारी दुनिया कैसे सुखी हो सकती है। सिर्फ़ एक व्यक्ति नहीं बल्कि सारी दुनिया कैसे सुखी हो सकती है। यही सन्देश भारत से समस्त संसार के पास जाना चाहिये।

श्रीअरविन्द अपने लेखों में लगातार तीन वाक्यांशों का उपयोग करते हैं—**दिव्य शरीर, दिव्य जीवन और दिव्य पूर्णता**—मानव पूर्णता नहीं। हम हमेशा मानव पूर्णता के बारे में सोचते आये हैं। हमारी शिक्षा-पद्धति मानव पूर्णता में सर्वोत्तम के साथ जुड़ी हुई है परन्तु चूँकि मानव अपूर्ण

है इसलिए मानव पूर्णता अपूर्ण है, हमारा मन अपूर्ण है और पूर्णता का विचार भी अपूर्ण है।

श्रीअरविन्द कहते हैं कि जगत् विकसनशील है, जड़ से वनस्पति और वनस्पति से पशु तक जीवन का विकास होता है, पशु से मनुष्य तक विकास होता है, तब आता है मन। हिन्दू शास्त्र दशावतार को लेकर इसी बात को और भाषा में कहते हैं। यह उच्चतर चेतना का विकास-क्रम में अवतरण है। यह अवतरण और विकास के बारे में दोहरी दृष्टि है। श्रीअरविन्द विकास की बात करते हुए कहते हैं कि विकास मनुष्य के साथ ही क्यों समाप्त होगा? वह अर्ध-पशु से अर्ध-मानव, अर्ध-मानव से अतिमानस, पृथ्वी पर दिव्य मानव तक जायेगा। दिव्य मानव का मतलब भावुक भला मानस नहीं है जो सच बोलता हो, औरों की सेवा करता हो। नहीं, दिव्य मानव का अर्थ होता है दिव्य मानव—जिसका शरीर ज्योति का शरीर हो।

जब मैंने पहली बार 'दिव्य जीवन' पुस्तक पढ़ी तो मैं चकरा गया। मैंने समझा कि मैंने उसे ग़लत समझा था। इसमें भौतिक अमरता की बात कैसे हो सकती है? शायद मैंने ग़लत समझा हो, फिर पता लगा कि बात ठीक थी। ज़्यादा आश्चर्यजनक बात यह है कि इसके बारे में मैंने सबसे पहले कैसे सुना। यह जानने के लिए मुझे पश्चिम की शरण लेनी पड़ी! बी.बी.सी. पर एक महिला का भाषण था 'दिव्य सम्भूति' पर जिसमें उन्होंने कहा कि श्रीअरविन्द के अनुसार विकास के अगले चरण में मानव-शरीर में परिवर्तन आयेगा, उसमें रक्त, त्वचा, अस्थि आदि न होगी—वह प्रकाश का शरीर होगा। जब तक हमारा शरीर रक्त, त्वचा, अस्थि का बना हो तब तक रोग, क्षीणता, मृत्यु अनिवार्य हैं, लेकिन अगर प्रकाश का शरीर हो जाये तो पृथ्वी पर स्वर्ग हो जायेगा, केवल देवों का शरीर ही प्रकाश का होता है। ईसाइयत, इस्लाम, हिन्दू-धर्म सभी ने यह स्वप्न देखा था परन्तु एक ही व्यक्ति ने इसे चरितार्थ करने की कोशिश की है और वह व्यक्ति आता है भारतवर्ष से। भारत माता ने हमें यह महान् गौरव प्रदान किया है।

श्रीअरविन्द ने कहा है कि यह नया शरीर प्रकाशमान, हवा-जैसा हलका और अनुकूलनीय होगा, सुनम्य होगा, उसके लिए भोजन और पानी की ज़रूरत न होगी, उस पर चोट न लग सकेगी। अगर उसे गोली मारी जाये तो उस पर आघात न लगेगा। और यह भी भगवान् की सृष्टि में अन्तिम

शब्द न होगा, अतिमानस से बढ़ कर कुछ और भी होगा। अर्थात् वे यह नहीं कहते कि उनका वचन, अन्तिम वचन है।

अगर मनुष्य के अन्दर, अपने छोटे-से जीवनकाल में कुछ उपलब्ध करने की क्षमता है तो उच्चतम वस्तु को क्यों न उपलब्ध किया जाये? इस पृथ्वी पर मैं इससे बड़ी किसी चीज़ का स्वप्न तक नहीं ले सकता। उस स्तर पर नर-नारी का सम्बन्ध भी उड़ जायेगा। श्रीअरविन्द कहते हैं कि एक बार अतिमानसिक शरीर बन जाये, पृथ्वी पर नया पदार्थ बन जाये तो अन्तरात्मा जनन-प्रजनन की सामान्य प्रक्रिया के बिना रूपान्तरित पदार्थ से सीधा नया शरीर धारण कर लेगी। श्रीअरविन्द की कृतियाँ पढ़ने से सभी मानव मूल्य बदल जाते हैं। हाँ, तो पहली चीज़ है दिव्य शरीर के बारे में उनके विचार, जब बहुत-से लोग इसे चरितार्थ करने की कोशिश करते हैं तो दिव्य जीवन बन जाता है। मन या बुद्धि द्वारा पथ-प्रदर्शन पाने वाला जीवन चाहे जितना ऊँचा क्यों न हो, रहता है मानव जीवन ही। वह दिव्य तभी बनता है जब भगवान् बिना किसी प्रतिबन्ध के, बिना किसी सीमा के, मानव नहीं बल्कि भागवत शरीर द्वारा हमारा पथ-प्रदर्शन करें और हमारे द्वारा अभिव्यक्त हों।

(क्रमशः)

—नवजातजी

वह तुम्हारे अन्दर मौजूद है

(आश्रम के विद्यार्थियों के सामने दिये गये एक भाषण के कुछ अंश)

... माताजी ने बतलाया है कि तुम सब बच्चे यहाँ किसलिए आये हो और वे तुम्हें क्या दे रही हैं। तुम यहाँ उन बाहरी चीज़ों के लिए नहीं हो जो तुम्हें इतनी आसानी से मिल जाती हैं, खेल-कूद के लिए भी नहीं हो जो तुम्हें बहुत पसन्द हैं, और कहीं भी तुम्हें शारीरिक शिक्षण के लिए इतनी सुविधाएँ न मिलेंगी। माताजी कहती हैं कि तुम यहाँ इसके लिए नहीं आये हो, अध्ययन के लिए भी नहीं, हालाँकि यहाँ सब प्रकार की सच्ची शिक्षा दी जाती है। तुम यहाँ आये हो ऐसी चीज़ के लिए जो सभी बाहरी

उपहारों से ज़्यादा क़ीमती है। जहाँ तक शिक्षा का सम्बन्ध है वह तो तुम्हें बाहर भी मिल सकती है, कुछ पहलुओं से देखा जाये तो यहाँ से भी अच्छी शिक्षा मिल सकती है। लेकिन यहाँ पर माताजी तुम्हें जो चीज़ दे रही हैं वह दुनिया-भर में और कहीं नहीं मिल सकती और वह है तुम्हारी अन्तरात्मा, जिसके बारे में दुनिया में कहीं कोई कुछ नहीं जानता। तुम यहाँ अपनी अन्तरात्मा के द्वारा लाये गये हो। वह तुम्हारे अन्दर है और तुम उसी के कारण आये हो, और किसी कारण से नहीं। तुम्हें यह बात जान लेनी चाहिये।

तुम्हारी अन्तरात्मा है क्या? वास्तव में तुम वही हो। तुम्हारा एक आकार है, एक बाहरी शरीर है, मन है, नाना प्रकार की क्षमताएँ और अक्षमताएँ हैं और इन्हीं कारणों से तुम अमुक व्यक्ति कहाते हो, लेकिन इस सबके पीछे, बाहर से दिखायी देने वाले मुखौटे के पीछे, इन हाथ-पैर, आँख-नाक आदि से बने चोगे के पीछे तुम्हारा सच्चा व्यक्तित्व है। कई बार लोग माताजी से नाम माँगते हैं, तब माताजी उनके सच्चे व्यक्तित्व को देख कर उसके अनुसार नाम देती हैं। वे तुम्हारी अन्तरात्मा को देख कर उसकी विशेषताओं को प्रकट करने वाला नाम देती हैं ताकि तुम अपनी सम्भावनाओं के अनुसार अपना चरित्र बना सको।

एक बार किसी ने मुझसे पूछा, हम उसे कैसे जानें, कैसे पहचानें? इसका सबसे अच्छा उपाय तो यही है कि तुम इतने विकसित हो सको कि तुम अपनी अन्तरात्मा को देख और पहचान सको और यह जान सको कि यह मैं है और यह मैं नहीं है। लेकिन उसके प्रकट होने की कई निशानियाँ हैं, अभी के लिए तुम इन्हीं से काम चला सकते हो—तुम्हारी सभी सुन्दर क्रियाएँ, ऊँचे विचार, महान् संकेत, सुन्दर कर्म—ये सब अन्तरात्मा से ही आते हैं। तुम्हारे अन्दर जो कुछ अच्छा है, सुन्दर है, यहाँ तक कि तुम्हारे भौतिक भावों में भी जो कुछ सुन्दर है वह अन्तरात्मा से आता है। उससे तुम्हारे अन्दर, और तुम्हारे बाहर भी, एक तरह की चमक आ जाती है। तुम्हारी अभिव्यक्ति में एक प्रकार की सुरुचि आ जाती है। तुम्हारी अन्दर की सत्ता का यह सबसे बाहरी चिह्न है। जिन चीज़ों को सुन्दर क्रियाएँ, सुन्दर भाव या सुन्दर विचार कहते हैं वे सब अन्तरात्मा से ही आती हैं और इनसे उलटी चीज़ें—बुरी क्रियाएँ, बुरे कर्म, बुरी गतिविधि तुम्हारी चेतना

को ढकने वाली चीज़ें हैं। जब तुम सचमुच प्रसन्न होते हो, कठिनाइयों, मुसीबतों और विपरीत अवस्थाओं के होते हुए भी प्रसन्न रहते हो तो जान लो कि यह अन्तरात्मा का काम है। सच्ची प्रसन्नता अन्तरात्मा से आती है और शारीरिक भाव पर भी अपना असर छोड़ जाती है। इसलिए कोई भी सुन्दर या महान् कार्य करने के लिए सबसे अच्छा उपाय यही है कि अपनी अन्तरात्मा को खोजो, उसे पहचानो। इसके लिए इतनी खोजने की ज़रूरत नहीं है जितनी पहचानने की, क्योंकि वह तुम्हारे अन्दर मौजूद ही है। तुम्हें उसे अपने पुराने मित्र या भाई की तरह पहचानना है। वह तुम्हारे अन्दर है उसे जानो। और जब उसके साथ तुम्हारा सम्पर्क हो जायेगा तभी तुम्हें ठीक तरह से पता लगेगा कि माताजी तुम्हारे लिए क्या ला रही हैं...।

अपनी रुचि को ज़्यादा अच्छी चीज़ों के लिए तैयार करो। जब तुम एक गाना सुनते हो तो उसे सुरुचि के साथ सुनो। ऐसे गीत होते हैं जो बहुत निचले स्तर के होते हैं और तुम्हें गिराते हैं, लेकिन ऐसे भी गीत होते हैं जो तुम्हें ऊपर उठा सकते हैं। सब कुछ तुम्हारी रुचि पर निर्भर करता है। अगर तुम्हारे अन्दर सुरुचि नहीं है तो तुम निचले स्तर के गीत ही पसन्द करोगे। तुम्हे अच्छी आवाज़ और बुरी आवाज़, सामञ्जस्यपूर्ण और सामञ्जस्यहीन आवाज़ में भेद करना आना चाहिये। इसी तरह सभी इन्द्रियों का विकास हो सकता है। बहुत-से लोग स्वर-संगति या रंग-संगति का फ़र्क नहीं समझ पाते। कई वर्णान्ध होते हैं, उनके लिए सफ़ेद और काला दो ही रंग होते हैं, नीला, पीला, हरा सब एक रहते हैं। यह सब इन्द्रियों की क्षमता और सुरुचि पर निर्भर होता है। इसी तरह कविता में भी अच्छी कविता और बुरी कविता में भेद होता है।

अगर तुम्हारे अन्दर सुरुचि नहीं है, अच्छे, बुरे की पहचान नहीं है तो तुम उसके लिए माँग कर सकते हो। तुम कह सकते हो कि मुझे सुरुचि दो, तो वह सहज रूप से तुम्हारे अन्दर से आयेगी। अच्छी चीज़ें उदार भी होती हैं। जो उनकी माँग करे उनके पास आ जाती हैं। सुरुचि विकसित करने से तुम्हारे अन्दर दृष्टि का विकास होगा और उससे धीरे-धीरे तुम्हारी अन्तरात्मा सम्मुख आ सकेगी।

जीवन में भी हमें अच्छे-बुरे की पहचान होनी चाहिये। यह अच्छा है, यह बुरा, मुझे यह करना चाहिये, यह नहीं करना चाहिये। सुरुचि के साथ

विवेक भी ज़रूरी है। खेलते समय भी ख़याल रखो, खेलने का अच्छा तरीक़ा भी हो सकता है और बुरा तरीक़ा भी। इसमें भी सुरुचि की ज़रूरत होती है। तुम जैसे चाहो दौड़ सकते हो, जैसे चाहो गेंद फेंक सकते हो, लेकिन इनमें एक सुन्दर ढंग होता है और एक भद्दा ढंग। तुम्हें सुन्दर ढंग से खेलना चाहिये। सभी क्षमताओं, सभी कामों के बारे में यही बात है। अच्छे तरीक़े तुम्हारी अन्तरात्मा की अभिव्यक्ति के रूप हैं। अन्तरात्मा के सम्पर्क के कारण तुम्हारी एकदम बाहरी, शुद्ध भौतिक क्रियाओं पर भी एक जादुई असर होगा। अच्छी चीज़ों को सच्चाई के साथ माँगो, अपने अन्तर से माँगो, माँ से—अन्तरात्माओं की माँ से माँगो और उनके योग्य बनने की कोशिश करो। इससे तुम्हारा जीवन बन जायेगा।

—नलिनीकान्त गुप्त

छा गया

हवा के झोंके से
जैसे ही अचानक खिड़की खुल गयी
खुला आसमान
मेरे कमरे में चला आया

मेज़ पर
कुहनियों में सिर दिये
सोच में डूबा मैं चौंक उठा

नयी स्फूर्ति की लहर
कौंध गयी मुझमें
और खुला आसमान मेरे
अन्तस् पर भी छा गया।

—श्री विश्वनाथ
'अन्तरा' से साभार

अपलक निहारती रह गयीं...

(प्रचलित लेकिन साथ ही एकदम सोंधी-सोंधी-भीनी ख़ुशबू समाये यह कहानी चौदह साल पहले प्रकाशित हुई थी—सं.)

प्राथमिक विद्यालय की अध्यापिका मिस थॉमसन का पहला दिन था पाँचवी कक्षा में और उसी दिन उन्होंने कक्षा में एक झूठ का ऐलान कर दिया! एक सरसरी नज़र अपने विद्यार्थियों पर फिरा, वे कह उठीं, "बच्चो, मैं तुम सभी को समान रूप से प्यार करती हूँ। तुम सब मेरी नज़र में बराबर हो।"

लेकिन यह कतई सच न था। यह सचमुच असम्भव था। आख़िरी पंक्ति में कुर्सी पर बोरे की तरह बैठा था सींकिया-सा टेडी स्टॉडर्ड भावविहीन, मुँह लटकाये चेहरे के साथ, या फिर यह कहना ज़्यादा ठीक होगा कि मन में एक तरह का आक्रोश दबाये...।

थॉमसन पिछले साल टेडी को देखती थीं कि वह दूसरे बच्चों के साथ न ठीक से खेलता था, न ही अच्छी तरह पेश आता था। उसके कपड़े भी बड़े अस्त-व्यस्त, मैले होते, रूखे बाल हवा के संग लड़ते, उसको देख वे हमेशा सोचा करती थीं—इस बच्चे को घिस कर नहलाना चाहिये, तब शायद इसकी शक्ल-सूरत कुछ बेहतर निकल आये! लेकिन तब वह चौथी कक्षा में था और वे पाँचवी को पढ़ाती थीं।

इस साल वही मैला-कुचैला लड़का गठरी बना उनकी कक्षा में बैठा था और उन्होंने अभी-अभी यह झूठी घोषणा कर दी थी कि वे सभी बच्चों को एक समान चाहती हैं! जब कि टेडी को देख कर कहीं उनके मन में चल रहा था, "इस नालायक़ से इस साल मेरा पाला पड़ा है। इसे तो मैं आड़े हाथों लूँगी।" और उसी वक्त टेडी उनकी आँख की किरकिरी बन गया।

पहले सप्ताह मिस थॉमसन ने सभी बच्चों की पिछली रिपोर्टें देखीं। ज़ाहिर था कि टेडी की उन्होंने सबसे आख़ीर में देखीं और वे चौंक उठीं—

दूसरे दर्जे की अध्यापिका ने लिखा था, "टेडी लाजवाब विद्यार्थी है, सभी का प्यारा, लेकिन कभी-कभी बड़ा गुमसुम, दुःखी-सा रहता है क्योंकि उसकी माँ सख़्त बीमार हैं। घर का वातावरण बच्चे पर ज़रूर बोझिल

पड़ता होगा।"

तीसरे दर्जे की रिपोर्ट थी, "माँ की मृत्यु ने टेडी पर गहरा असर डाला है। वह अपना अच्छे-से-अच्छा करना चाहता है, लेकिन घर पर पिता कोई दिलचस्पी नहीं रखते। बच्चे के लिए कुछ करना ज़रूरी है।"

चौथे दर्जे की अध्यापिका ने लिखा था, "टेडी बहुत चुपचाप रहता है, न कक्षा में कोई रस लेता है, न खेल के मैदान में। न उसके दोस्त हैं, न वह चाहता ही है। कक्षा में बैठा-बैठा सोता रहता है—असम्भव छात्र। कुछ तो करना होगा..."

थॉमसन का जी भर आया। "कुछ करना होगा", "असम्भव छात्र"—बस बच्चे के ऊपर ये बिल्ले टाँक, "करने वाले" चुपके से पल्ला झाड़ कर हट गये...। थॉमसन ने अपने-आपको कोसा। 'टेडी के बारे में मैंने क्या नहीं सोच लिया था!' अध्यापिका थॉमसन ने उसी पल ठान लिया—"इस होनहार बिरवे को मैं "बेचारा", "असम्भव" की सूली पर **नहीं** चढ़ने दूँगी।"

अगले दिन का वे बेसब्री से इन्तज़ार करने लगीं। टेडी तो वैसे ही पेशानी में बल डाले अपनी कुर्सी पर 'धम्म'-सा, धँसा हुआ था। अध्यापिका की मधुर मुस्कान से एकबारगी वह चौंक गया, फिर माथे की सिलवटें और गहरी हो गयीं...।

लेकिन पाँसा फिंक चुका था। कक्षा के अन्त तक थॉमसन ने देखा कि आप-ही-आप टेडी कुछ सीधा बैठ गया था, आँखों में चमक न सही, लेकिन हलका-सा कौतूहल उतर आया था। खेल के मैदान में भी टेडी हमेशा की तरह मुँह लटकाये खड़ा था। शिक्षिका की मुस्कान से भेंट होते ही उसके अंगों में मामूली हरकत होने लगी। अध्यापिका ने अपने-आपको बधाई दी!

थॉमसन रोज़ विद्यालय जाने के लिए उतावली रहने लगीं। प्यार के लहजे, आँखों के इशारों और मन्द मुस्कानों ने हफ़्ते-भर में थियोडोर, यानी टेडी के निर्जीव शरीर में जैसे जान फूँक दी। अध्यापिका के प्रश्न पूछने, उनकी टकटकी बँधी दृष्टि निहारने पर उसकी आँखों में एकबारगी चमक ज़रूर उठती थी, लेकिन होंठ अब तक सिले हुए थे।

थॉमसन को कोई शिकायत न थी।

क्रिसमस का त्योहार क़रीब आ रहा था। प्रथा के अनुसार हर एक बच्चे ने रंगीन पन्नियों में बँधे, चमकदार रिबनों से लिपटे अपने-अपने

उपहार अपनी अध्यापिका मिस थॉमसन को थमाये। सबके अन्त में बढ़ा टेडी का हाथ थॉमसन की ओर—सल से भरे बाँस के काग़ज़ में लिपटा, छोटा-सा पुलिन्दा उसने जैसे ही अध्यापिका को दिया उन्होंने पलट कर उसे देखा—वह तो ठुड्डी गर्दन में धँसाये खड़ा था। उन्होंने प्यार से उसके बाल जो सहलाये कि सिर सीधा हो गया, आँखें ऊँची हो गयीं, प्यार का सरगम बज उठा, मुस्कान फैल गयी और अध्यापिका उसमें सराबोर हो गयीं।

सब बच्चों के उपहार खुले—चॉकलेट, कुकी, केक, पेस्ट्री—सभी रंगीन काग़ज़ों से यही निकला। बाक़ी बच रहा एक! मुड़े-तुड़े काग़ज़ से जब बिल्लौर के पत्थरों की एक पुरानी माला—जिसमें जगह-जगह से पत्थर निकल गये थे—और एक-चौथाई इत्र से भरी बोतल निकली तो बच्चों की दबी हँसी के बिखरने के पहले उन्होंने उसे अपनी कठोर दृष्टि की बुहारू से समेट लिया...। सबका शुक्रिया अदा कर उसी समय उन्होंने वह माला पहन ली और बूँद-भर इत्र अपनी कलाइयों पर चुपड़ लिया।

उस रोज़ कक्षा में कहानी सुनाते समय शर्मीला टेडी अपलक उन्हें ताकता रहा, उसका सारा शरीर मानों कान बन गया था! विद्यालय के बाद वह बाहर दरवाज़े पर मिस थॉमसन का इन्तज़ार कर रहा था उनसे बस यह कहने के लिए—"मिस, आज आपसे बिलकुल मेरी मॉम के जैसी ख़ुशबू आ रही है।"

घर पहुँच कर थॉमसन घण्टा-भर रोयी होंगी। उस दिन से उन्होंने अंग्रेज़ी, व्याकरण, गणित, विज्ञान—तथाकथित विषय पढ़ाने छोड़ दिये; उन्होंने बच्चों को पढ़ाना शुरू किया, प्यार-मोहब्बत-समझ के जल से उन्हें सींचना शुरू किया।

कक्षा का सबसे फिसड्डी, सबसे अनमना उनका नयनतारा बन गया, जैसे-जैसे दिन बीतते गये वह बुझा-बुझा दीपक स्नेह का तेल पाकर अधिकाधिक बलने लगा। साल के अन्त तक तो टेडी कक्षा के उत्तम विद्यार्थियों में पहुँच गया। मनहूसी से पुते उस चिड़चिड़े चेहरे का रूपान्तरण 'स्टाफ़ रूम' की चर्चा का विषय बन गया! पाँचवी कक्षा के सालाना इम्तिहान में अव्वल आया—थियोडोर स्टॉडार्ड।

मिस थॉमसन के जीवन का सुनहला दिवस!

कक्षा में पहले दिन बोला गया उनका झूठ आज भी झूठ ही था—वे

सबको एक समान नहीं चाहती थीं। एक उनके दिल का नगीना बन चुका था।

अगले साल टेडी का साथ मिस थॉमसन से छूट गया। वह छठी कक्षा में चला गया, लेकिन विद्यालय के बाद हर रोज़ वह अपनी सबसे प्यारी 'मिस' से कुछ समय बतियाता ज़रूर। साल के पहले ही दिन उसने उसके हाथ में एक पुर्ज़ा थमाया था—"मिस, आप मेरे जीवन में सबसे अच्छी शिक्षिका थीं और हमेशा रहेंगी।"

पलक झपकते समय बीत जाता है। तीन साल बाद मिस थॉमसन का तबादला दूसरे शहर में हो गया। सबने उनको भावभीनी विदाई दी। नवीं कक्षा के विद्यार्थी टेडी का रो-रोकर जी हलकान हो गया। थॉमसन ने उसे अपने सीने में भींच कर उसके कानों में कोई गुरुमन्त्र फूँक दिया। बच्चे की रुलाई थम गयी लेकिन सिसकियाँ घिसटती रहीं।

टेडी ने जुदाई के अपने ग़म को पढ़ाई में झोंक दिया। हर इम्तिहान में पहला आता, जब-जब थॉमसन के नाम चिट्ठी भेजता, आख़िरी शब्द होते —"आप ही मेरी प्रियतमा शिक्षिका हो।"

कॉलेज में टेडी को पहला स्थान मिला, साथ-साथ आगे पढ़ने के लिए वज़ीफ़ा भी। थॉमसन के पास चिट्ठी आयी—कृतज्ञता से सराबोर!

चिट्ठियों का सिलसिला रुका नहीं।

चार साल बाद टेडी ने लिखा—"मेरी सबसे शानदार मिस! मुझे डिग्री मिल गयी है। अब मेरा नाम कुछ लम्बा हो गया है—डॉ. थियोडोर एफ़. स्टॉडर्ड, एम. डी.। मेरी ज़िन्दगी की सबसे अच्छी शिक्षिका को टेडी का ढेरों प्यार।"

कहानी यहीं नहीं ख़त्म हो जाती। उस वसन्त थॉमसन के पास ख़ुशख़बरी लिये टेडी का पत्र आया—

मेरी अपनी मिस, मैं अपनी भावी पत्नी से मिल चुका हूँ। हम जल्द ही परिणय-सूत्र में बँधने की सोच रहे हैं। मैं अपने पिता को साल-भर पहले खो चुका हूँ। क्या आप कृपा करके हमारे विवाह में वह स्थान ग्रहण करेंगी जो माँ का होता है?

आपका अपना टेडी।

" ... जो माँ का होता है, ... जो माँ का होता है" की भीनी-भीनी बौछार में मिस थॉमसन सिर से पैर तक भीग गयीं, निहाल हो गयीं।

थॉमसन ने टेडी की माँ की भूमिका निभायी। शादी पर उन्होंने गले में पहनी थी बिल्लौर के पत्थरों की वह पुरानी माला, जिसके कई पत्थर ग़ायब थे और लगाया था चौथाई शीशीवाला वह इत्र।

टेडी का सारा संसार और भी जगमगा उठा। ख़ुशी की बाढ़ को आँखों से बहने दिया उसने। थॉमसन का भी वही हाल था। एक दिन विद्यालय छोड़ते समय मिस थॉमसन ने छात्र टेडी के कानों में गुरुमन्त्र फूँका था —"बेटे, साहसी बनो।" आज टेडी उनके कानों में फुसफुसाया—"माँ, तू महान् है!"

शादी की रस्म पूरी हुई। टेडी की गुड़िया-जैसी दुलहिन को थॉमसन ने प्यार और उपहारों से लाद दिया।

चलते समय आलिंगनबद्ध माँ और बेटे ख़ूब रोये। ये आँसू दुःख के नहीं, ज़िन्दगी को सँवारने की ख़ुशी के प्रतीक थे। बेटे ने माँ से कहा— "धन्यवाद माँ, बहुत-बहुत धन्यवाद, मेरी ज़िन्दगी पर लगी काई को हटाने के लिए, मुझे चमका कर आज इस रूप में ढालने के लिए।"

माँ बेटे के माथे को चूमती हुई बुदबुदायीं—"शुक्रिया तो मुझे तुम्हारा अदा करना है टेडी, मुझे सच्चे मायने में पढ़ाना सिखाने के लिए, मेरी आँखों पर लगी अँधेरी को हटा कर, ज़िन्दगी के प्रति मेरे नज़रिये को बदलने के लिए। मेरे सारे बदलाव के ज़िम्मेवार तो तुम हो बेटे!"

"नहीं, तुम ही हो मेरे जीवन में धूप खिलाने की ज़िम्मेवार माँ।"

बेटे के सामने निरुत्तर माँ, उसे प्यार से अपलक निहारती रह गयीं।

—वन्दना

प्रेम सकल हो, भाव अटल हो,
मन को मन की आशा हो।
बिन बोले जो व्यथा जान ले,
वह अपनों की परिभाषा हो।

"सब्र" और "सच्चाई"
एक
ऐसी सवारी है
जो अपने सवार को
कभी
गिरने नहीं देती
न किसी के क़दमों में
और न किसी की नज़रों में।

मंज़िल यूँ ही नहीं मिलती राही को,
जुनून-सा दिल में जगाना पड़ता है।
पूछा चिड़िया से कि घोंसला कैसे बनता है
वह बोली कि तिनका-तिनका उठाना पड़ता है।

अग्निशिखा
श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका
वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—२००रु.; तीन वर्ष—५८०रु.; पाँच वर्ष—९६०रु.
संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी
मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस
प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी
प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पॉण्डिचेरी ६०५००१
मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू,
पॉण्डिचेरी ६०५००१, भारत
सम्पादक : वन्दना
स्वामी : श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी-६०५००१
दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८
Email: info@aurosociety.org
Website: www. aurosociety.org

भगवान् के प्रति कर्तव्य किसी सामाजिक या पारिवारिक कर्तव्य की अपेक्षा कहीं अधिक पवित्र है; अधिक पवित्र इसलिए क्योंकि मानव समुदाय में लगभग पूरी तरह इसकी अवहेलना होती है या इसे गलत समझा जाता है।

श्रीमाँ

शुभ कामनाओं सहित

श्रीअरविन्द सोसाइटी राजस्थान राज्य समिति,
जयपुर ३०२०१९ (राजस्थान)
www.aurosocietyrajasthan.org

Date of Publication: 1st July 2024
Rs. 30 (Monthly)

अग्निशिखा एवम् पुरोधा, वर्ष १, अंक ११, PONHIN00007 (RNI)
प्रकाशक स्थलः सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्ती स्ट्रीट, पांडिचेरी ६०५००१

SRI AUROBINDO
A New Dawn
A HAND-PAINTED ANIMATION FILM BY SRI AUROBINDO SOCIETY

With wind and the weather beating round me
Up to the hill and the moorland I go.
Who will come with me? Who will climb with me?
Wade through the brook and tramp through the snow?
~Sri Aurobindo

WINNER Best Animation Film Spring Time International Film Festival 2023
WINNER Best Animation Film Asia India Awards of Excellence 2023
WINNER Special Jury Mention 16th Jaipur International Film Festival Jiff 2024
WINNER BANGKOK SOCIETY OF FILM CRITICS AWARD 2024

Watch the 28-minute film in English, Tamil, Telugu & Hindi
at **www.anewdawn.in**